TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180983
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6/U65S Accession No. H2543

Author उपाध्याय, अयोध्यासिंह

Title स्वर्गीय संगीत।

This book should be returned on or before the date last marked below.

मुद्रक—
मारकण्डेय प्रसाद, 'यादव'
जनता प्रेस, बुलानाला बनारस ।

आमुख

पुण्यश्लोक 'हरिऔध' कवि के साथ ही दार्शनिक भी थे। उनके आध्यात्मिक और आधिभौतिक चिंतन का फल है 'स्वर्गीय संगीत'। जब कवि दार्शनिक चिंतना में अपना समय व्यतीत करने लगता है तब उसकी रचना में बुद्धि पक्ष की प्रबलता और हृदय पक्ष की अल्पता होने लगती है। 'हरिऔध' जी इसी विश्व को स्वर्ग और नरक का स्थल समझते थे। वे लोक संग्रही कवि थे अतः उनकी सदा यही प्रेरणा रही कि इस विश्व को ही सत्कर्म और सद्भावना द्वारा स्वर्ग का रूप प्रदान किया जाय।

'स्वर्गीय संगीत' में उन्होंने दृश्य, अदृश्य और अन्तर्जगत आदि पर अपने विचार प्रकट किये हैं। लेकिन इस बात का पाठक को निरन्तर ध्यान रखना चाहिये कि ये वर्णन केवल कवि की कल्पना मात्र नहीं हैं। इनका उनके जीवन की अनुभूतियों के साथ गहरा संबंध है। उनकी विचार धारा का निर्णय, उनकी जीवन संबंधी अनुभूतियों ने किया है। उनकी चतन संबंधी सामग्री दार्शनिक होते हुए भी लोक से, समाज से परे नहीं है।

हिन्दी साहित्य में कवि सम्राट् 'हरिऔध' का एक विशिष्ट स्थान है आज प्रचार और अहंवाद के युग में भले ही इन महाकवियों को हम भुला देने का यत्न करें पर भारती की इन लोगों ने जिस तन्मयता से आरती उतारी है वह कोई भुला नहीं सकता। 'हरिऔध' जी प्रथम प्रबन्धकार कवि हैं। उनका 'प्रिय-प्रवास' एक प्रकाश स्तम्भ है जो युग-युग तक हिन्दी भाषा भाषियों को जीवन तथा चेतना प्रदान करता रहेगा। उसकी रचना संस्कृत वृत्तो में हुई है।

यह 'स्वर्गीय संगीत' 'हरिऔध' जी की दूसरी महत्व पूर्ण और विशिष्ट रचना है जो 'प्रिय-प्रवास' के बाद संस्कृत वृत्तों में लिखी गयी है। इसके पढ़ने के समय 'प्रिय-प्रवास' का सा आनन्द प्राप्त होता है। 'हरि औध' जी कल्पना और शब्दों के महान धनी थे, उनकी कोमल कान्त पदावली प्रसाद गुण सम्पन्न तो है ही उसमें दार्शनिक तत्व का भी आभास प्राप्त होता है।

'स्वर्गीय संगीत' की लहरी पाठकों को स्वर्गीय आनन्द प्रदान करेगी ऐसा हमारा विश्वास है। नवयुवकों के लिए तो यह और भी उपयुक्त है क्योंकि यह जीवन के संबंध में दार्शनिक आधार पर विचार करती है।

मकर संक्रान्ति

१४-१-५२

वेणीमाधव शर्मा

तारतम्य

मंगल कामना १

१. प्रथम आलाप ४
अकल्पनीय की कल्पना

२. द्वितीय आलाप ६
दृश्य जगत्

३. तृतीय आलाप २७
अन्तर्जगत्

४. चतुर्थ आलाप ५६
सांसारिकता

५. पंचम आलाप ६६
स्वर्ग और नरक

६. षष्ठ आलाप ७५
प्रलय प्रपंच

७. सप्तम आलाप ८१
सत् चित् आनन्द

स्वर्गीय संगीत

स्वर्गीय संगीत

मंगल-कामना

शार्दूल-विक्रीडित

आराधे भव-साधना सरस हो साधें सुधासिक्त हों।
सारी भाव-विभूति भूतपति की हो सिद्धियों से भरी।
पाता की अनुकूलता कलित हो धाता विधाता बने।
पाके मादकता-विहीन मधुता हो मोदिता मेदिनी।१।

सारे मानस-भाव इन्द्रधनु-से हों मुग्धता से भरे।
देखे श्यामलता प्रमोद-मदिरा मेधा-मयूरी पिये।
न्यारी मानवता सुधा बरस के दे मोहिनी मंजुता।
भू को मेघ मनोज्ञ-मूर्त्ति कर दे माधुर्य-मुक्तामयी।२।

है आलोकित लोक-लोक किसकी आलोक-माला मिले।
पाते हैं उसको सुरासुर कहाँ जो सत्य सर्वस्व है।
है संयोजक कौन सूर-शशि का, स्वर्गीय सम्पत्ति का।
कोई क्यों उसको असार समझे, संसार में सार है।३।

न्यारी शान्ति मिली कहीं विलसती, है क्रान्ति होती कहीं।
प्याला है रस का कहीं छलकता, है ज्वाल-माला कहीं।
है आहार, विहार, वैभव कहीं; संहार होता कहीं।
है अत्यन्त अकल्पनीय भव की क्रीडामयी कल्पना।४।

है आराधक सर्वभूत-हित का आधार सद्वृत्ति का।
व्याख्याता भव-मुक्ति-भुक्ति-पथ का त्राता सदासक्ति का।
पाता है जन पूत भाव निधि का दाता महामंत्र का।
ज्ञाता भारत है समस्त मत का धाता धराधर्म का।५।

माता है मृदु भाव की, मनुजता की है महा साधना।
पाता है भव-शान्ति की सरलता की सिद्धि-भूता सुधा।
है आधार विभूति की, सुहृदता-राका-निशा-चंद्रिका।
सद्भावामृत-सिंचिता श्रुति-रता है भारती सभ्यता।६।

छाया था जब अंधकार भव में संसार था सुप्त-सा।
ज्ञानालोक-विहीनओक सब था, विज्ञान था गर्भ में।
ऐसे अद्भुत काल में प्रथम ही जो ज्योति उद्भूत हो।
ज्योतिर्मान बना सकी जगत को है वेद-विद्या वही।७।

नाना देश अनेक पंथ मत में है धर्म-धारा बही।
फैली है समयानुसार जितनी सद्वृत्ति संसार में।
देखे वे बहु पूत भाव जिनसे भू में भरी भव्यता।
सोचा तो सब सार्वभौम हित के सर्वस्व हैं वेद ही।८।

मूसा की वह दिव्य ज्योति जिसमें है दिव्यता सत्य की।
सच्चिन्ता जरदश्त की सदयता उद्बुद्धता बुद्ध की।
ईसा की महती महानुभवता पैगम्बरी विज्ञता।
पार्ती हैं विभुता-विभूति जिससे है वेद-सत्ता वही।९।

नाना धर्म-विधान के विलसते उद्यान देखे गये।
फूले थे जितने प्रसून उनमें स्वर्गीय सद्भाव के।
फैली थी जितनी सुनीति-लतिका, थे बोध-पौधे लसे।
जाँचा तो श्रुतिसार-सृष्टि-रस से थे सिक्त होते सभी।१०।

देखे ग्रंथ समस्त पंथ मत के, सिद्धान्त-बातें सुनीं।
नाना वाद-विवाद-पुस्तक पढ़ी, सवाद वादी बने।
जाँची तर्क-वितर्क-नीति-शुचिता, त्यागा कुतर्कादि को।
तो जाना सर्वज्ञता जगत की है वेद-भेदज्ञता।११।

———

प्रथम आलाप

अकल्पनीय की कल्पना

शार्दूल-विक्रीडित

सोचे व्यापकता-विभूति प्रतिभा है पार पाती नहीं।
होती है चकिता विलोक विभुता विज्ञान की विज्ञता।
लोकातीत अचिन्तनीय पथ में है चूकती चेतना।
कोई व्यक्ति अकल्पनीय विभु की कैसे करे कल्पना।१।

आती है सफरी-समूह-उर में क्या सिंधु की सिंधुता?
क्या ज्ञाता खगवृन्द है गगन के विस्तार-व्यापार का?
पाती है न पिपीलिका अवनि की सर्वाङ्गता का पता।
कैसे मानव तो महामहिम की सत्ता-महत्ता कहे।२।

ऐसा अंजन पा सका न जिससे होती तमो-हीनता।
कोई दे न सका उसे सदय हो स्वाभाविकी दिव्यता।
जाला दूर हुआ, न अंध दृग को आलोक-माला मिली।
कैसे लोक विलोक लोकपति को लोकोपयोगी बने।३।

जो है अंत-विहीन अंत उसका कैसे किसी को मिले।
कैसे हो वह गीत गीत रच के जो देव गोतीत है।
कैसे चित्त सके विचार उसको जो चित्त का चित्त है।
कैसे लोचन लें विलोक, वह तो है लोचनों में छिपा।४।

लोकों का लय हो गये प्रलय में भू लोप लीला हुए।
नाना भूत-प्रसूत वाष्प अणु के संसारव्यापी बने।
छाये कज्जल-से प्रगाढ़ तम के आये महाशर्वरी।
सोता है विभु शेष-भूत भय में, है शेषशायी अतः।५।

चाहे हों फल, फूल, मूल, दल या छोटी-बड़ी डालियाँ।
चाहे हो उसकी सुचारु रचना या मुग्धकारी छटा।
जैसे हैं परिणाम अंग-तरु के सर्वांश में बीज के।
वैसे ही उस मूल-भूत विभु का विस्तार संसार है।६।

जैसे दीपक-ज्योति से तिमिर का है नाश होता स्वतः।
जैसे वायु-प्रवाह से चलित है होती पताका स्वयं।
जैसे वे यह कार्य हैं न करते इच्छा-वशीभूत हो।
वैसे ही भव है विभूति-पति की स्वाभाविकी प्रक्रिया।७।

जैसे है घटिका स्वतंत्र बजने या बोलने आदि में।
जैसे सूचक सूचिका समय की देती स्वयं सूचना।
निर्माता मति ज्यों निमित्त बन के है सिद्धिदात्री बनी।
सत्ता है उस भाँति ही विलसती सर्वेश की सृष्टि में।८।

जो सत्ता सब काल है विलसती सर्वत्र संसार में।
सारे जीव समूह-मध्य जगती जो जीवनी-ज्योति है।
व्यापा है वह व्योम से अधिक, है तेजस्विनी तेज से।
पूता है पवमान से, सलिल से सिक्ता, रसा से रसा।९।

आती तो न सजीवता अवनि में जो वायु होती नहीं।
कैसे तो मिलती उसे सरसता जो वारि देता नहीं।
तो मीठे स्वर का अभाव खलता जो व्योम होता नहीं।
कैसे लोक विलोकनीय बनता आलोक पाता न जो।१०।

कान्ता कुण्डलिनी अनन्त सरि का धारा समा क्यों बनी।
पाया क्यों घन श्वेतखंड उसने जो हैं सदाभा-भरे।
कैसे तारक-पुंज साथ उसको ब्रह्मांड-माला मिली।
है वैचित्र्यमयी विभूति किसकी नीहारिका व्योम की।११।

आभा से तन की विभामय बना ब्रह्मांड-व्यापार को।
नाना लोक लिये अचिन्त्य गति से लोकाभिरामा बनी।
तारों के मिष कंठ-मध्य पहने मुक्तावली-मालिका।
जाती है बन केलि-कामुक कहाँ आकाश-गंगांगना।११।

नाना लोक समस्त भूतचय में सत्तामयी सृष्टि में।
सारी मूर्त्त अमूर्त्त ज्ञात अथवा अज्ञात उत्पत्ति में।
जो है व्यापक, क्या वही न विभु है, क्या है न कर्त्ता वही।
है संचालक कौन दिव्य कर से संसार के सूत्र का।१३।

व्यापी है जिसमें विभा वलय-सी नीलाभ श्वेतप्रभा।
होते हैं सित मेघ-खंड जिसमें कार्पास के पुंज-से।
सर्पाकार नितान्त दिव्य जिसमें नीहारिकाएँ मिलीं।
फैला है यह क्या पयोधि-पय सा सर्वत्र आकाश में।१४।

क्या संसार-प्रसू विभूति यह है? क्षीराब्धि क्या है यही?
क्या विस्तारित शेषनाग-तन है नीहारिका-रूप में?
क्या आभामय कान्ति श्याम वपु की है श्वेतता में लसी?
किंवा है यह कौतुकी प्रकृति की कोई महा कल्पना।१५।

आँखें हैं बुध की विचित्र कितनी, हैं दूरबीनें बनी।
तो भी दिव्य कला-निकेत कितने नक्षत्र अज्ञात हैं।
कैसे जान सके मनुष्य उसको जो विश्व-सर्वस्व है।
जाने जा न सके अनन्त पथ के सारे सितारे अभी।१६।

क्या जाना करके प्रयत्न कितने या दूरबीनें लगा।
है दूरी कितनी, प्रसार कितना है कान्ति कैसी कहाँ।
ऐसे ही कुछ बाहरी विषय का है बोध विज्ञान को।
पूरा ज्ञान कहाँ हुआ मनुज को तारों-भरे व्योम का।१७।

तारे हैं कितने सजीव, कितने निर्जीव हैं हो गये।
कैसे हैं तन रंग-रूप उनके हैं जीव जैसे जहाँ।
भू-सी है सुविभूति भूति सबमें या भिन्नता है भरी।
ये बातें बतला सके अवनि के विज्ञान-वेत्ता कहाँ।१८।

नाना ग्रंथ रचे गये अवनि में विज्ञान-धारा बही।
चिन्ताशील हुए अनेक कितने विज्ञानवादी बने।
तो भी भेद मिला न भूत-पति का, सर्वज्ञता है कहाँ।
ज्ञाता-हीन बनी रही जगत में सर्वेश-सत्ता सदा।१९

पाती है वर विज्ञता विफलता मर्म्मज्ञता मूकता।
सच्चिन्ता-लहरी महाविपमता दैवज्ञता अज्ञता।
सोचे सर्व विधान सर्व-गत का ज्ञाता बने विश्व का।
होती है बहुकुंठिता विबुधता सर्वज्ञता वंचिता।२०

सीखा ज्ञान, पढ़े पुराण श्रम से, वेदज्ञता लाभ की।
आँखें मूँद, लगा समाधि, समझा, कीं साधनाएँ सभी।
ज्ञाता की अनुभूत बात सुन ली, विज्ञानियों में बसे।
सौ-सौ यत्न किये, रहस्य न खुला संसार-सर्वस्व का।२१।

दिव्या भूति अचिन्तनीय कृति की ब्रह्माण्ड-मालामयी।
तन्मात्रा-जननी ममत्व-प्रतिमा माता महत्तत्त्व की।
सारी सिद्धिमयी विभूति-भरिता संसार-संचालिका।
सत्ता है विभु की नितान्त गहना नाना रहस्यात्मिका।२२।

———

द्वितीय आलाप

दृश्य जगत्

शार्दूल-विक्रीडित

सातो ऊपर के बड़े भुवन हों या सप्त पाताल हों।
चाहे नीलम-से मनोज्ञ नभ के तारे महामंजु हों।
हो वैकुंठ अकुंठ ओक अथवा सर्वोच्च कैलास हो।
हैं लीलामय के ललाम तन से लीला-भरे लोक यों।१।

कोई है कहता, अनन्त नभ में ये दिव्य तारे नहीं।
नाना हस्त-पद-प्रदीप्त नख हैं व्यापी विराटांग के।
कोई लोचन वन्दनीय विभु का है तीन को मानता।
राका-नायक को, दिवाधिपति को, विभ्राद्विभावह्नि को।२।

कंठों का बन कंठ मूल कहला तानों लयों आदि का।
नादों में भर के निनाद स्वर के स्वारस्य का सूत्र हो।
दे नाना ध्वनि-पुंज को सरसता, आलाप को मुग्धता।
गाता है नित कौन गीत किसका बाजे करोड़ों बजा।३।

लेके मंजुल अंक में प्रथम दो धारें सदाभामयी।
पाके नूतन लालिमा फिर मिले प्यारी प्रभा भानु की।
ऐसा है वह कौन लोक जिसको है मोह लेती नहीं।
लीलाएँ कर मन्द-मन्द हँस के प्राची दिशा सुन्दरी।४।

है लालायित नेत्र प्रीति-जननी है लालिमा से लसी।
है लीला-सरि की ललाम लहरी प्रातः-प्रभारंजिनी।
है प्राची-कर-पालिता प्रिय सुता है मूर्त्ति माधुर्य्य की।
ऊषा है अनुराग-राग-वलिता आलोक-मालामयी।५।

साधे से सब मोर-मंडल सधा, बाँधे बँधी शृंखला।
पाले से उसके पली वसुमती, टाले टली आपदा।
पाता है तृण-राजि का विटप, का, त्राता लता-बेलि का।
धाता है रवि सर्व-भूत हित का, है अन्नदाता पिता।६।

रत्नों की कमनीय कान्ति दिव को, वारीश को रम्यता।
आभा-सी सुविभूति भूत-दृग को, तेजस्विता दृष्टि को।
भू को वैभव, पुष्प को विकचता, सद्वर्णता वस्तु को।
देता है रवि ज्योति-पुंज विधु को, हेमाद्रि को हेमता।७।

है राकापति, मंजुता-सदन है, माधुर्य-अंभोधि हैं।
है लावण्य-सुमेरु-शृंग, जिसको आलोक-माला मिली।
पाती हैं उपमा सदैव जिसकी संक्रान्ति की कीर्त्तियाँ।
जो है शंकर-भाल-अंक उसको कैसे कलंकी कहें।८।

दे दे मंजु सुधा लता विटप को है सींचता सर्वदा।
नाना कंद समूह को सरस हो है सिक्त देता बना।
पुष्पों को खिलता विलोक हँसता स्नेहाम्बुधारा बहा।
न्यारा है वह चारु चन्द्र जिसकी है प्रेमिका चन्द्रिका।९।

पाता है सुकुमारता-सदन का, है स्निग्धता का पिता।
धाता है रस का, महा सरस का सौन्दर्य्य का है सखा।
दाता है कमनीय कान्ति-निधि का, माधुर्य्य का है धुरा।
छाता है विधु एक क्षत्रपति का संदीप्त-रत्नच्छटा।१०।

है आभा कमनीय पुंज, महि का सार्थी, सिता का धनी।
नाना औषध-मूल-भूत, प्रतिभू पीयूष-पाथोधि का।
है धाता प्रतिभा प्रसूत, रवि का स्नेही, सुरों का सखा।
कान्तात्मा कवि के कला-निलय का आलोक राकेश है।११।

शृंगों के हिम पुंज की सुछवि का प्रासाद की दीप्ति का।
पुष्पों पल्लव आदि के विभव का आभामयी वीचि का।
भू की अन्य विभूति का, प्रकृति के संसिक्त सौन्दर्य का।
है आधार मयंक वारिनिधि के उन्मुक्त उल्लास का।१२।

होता ज्ञात नहीं रहस्य इनका ये हैं अविज्ञात से।
कोई पा न सका पता प्रगति का विस्तार निस्तार का।
कैसे देख इन्हें न चित्त दहले, कैसे न उत्कंठ हो।
हैं ये केतु विचित्र, पुच्छ जिनके हैं कोटिशः कोस के।१३।

क्रीडाएँ अवलोक लीं अनल की, देखी कला की कला।
ज्योतिर्भूति विलोक ली, पर कहाँ ऐसी छटाएँ मिलीं।
ऐसे लोचन कौन हैं वह जिन्हें देती नहीं मुग्धता।
उल्का की कलकेलि व्योम-तल की हैं दिव्य दृश्यावली।१४।

हैं मुक्तामय-कारिणी अवनि की, हैं स्वर्ण-आभामयी।
हैं कान्ता कुसुमालि की प्रिय सखी, हैं? वीचियों की विभा।
शोभा हैं अनुरंजिनी प्रकृति की क्रीडामयी कान्ति की।
देती हैं दिव की प्रभात-किरणें, हैं दिव्य देवांगना।१५।

केले के दल को प्रदान करके बूँदें विभा-वाहिनी।
सीपी का कमनीय अंक भरके, दे सिंधु को सिंधुता।
शोभा-धाम बना लता-विटप को सद्वारि के बिन्दु से।
आते हैं बन मुक्त व्योम-पथ में मुक्ता-भरे मेघ ये।१६।

शृंगों से मिल मेरु में विचरते प्रायः झड़ी बाँधते।
बागों में वन में विहार करते नाना दिखाते छटा।
मोरों का मन मोहते, विलसते शोभामयी कुंज में।
आते हैं घन घूमते घहरते पाथोधि को घेरते।१७।

कैसे तो सर अंक में विलसते, क्यों प्राप्त होती सरी।
कैसे पादप-पुंज लाभ करती हो शस्य से श्यामला।
कैसे तो मिलते प्रसून, लसती कैसे लता-वेलि से।
जो पाती न धरा अधीर भव में धाराधरी-धीरता।१८।

[illegible]नती प्रशान्त रहती, क्यों दूर होती तृषा ।
कैसे पाकर जीव-जन्तु बनती श्यामायमाना मही ।
होते जो न पयोद, जो न उनमें होती महा आर्द्रता ।
रक्षा हो सकती न अन्य कर से तो चातकी वृत्ति की ।१९।

गाती है गुण, साथ सर्व सरि के सानंद सारी धरा ।
प्रेमी हैं जग-जीवमात्र उसके, हैं चातकों से व्रती ।
क्यों पाता न पयोद मान भव में होता यशस्वी न क्यों ।
है स्नेही उसका समीर, उसकी है दामिनी कामिनी ।२०।

मीठा है करता पयोद विधि से वारीश के वारि को ।
देता है रस-सी सुवस्तु सबको, है सींचता सृष्टि को ।
नेत्रों का, असिताम्बरा अवनि का, काली कुहू रात्रि का ।
खोता है तम दामिनी-दमक की दे दिव्य दीपावली ।२१।

नीले, लाल, अश्वेत, पीत, उजले, ऊदे, हरे, बैंगनी ।
रंगों से रँग, सांध्य भानु-कर की सत्कान्ति से कान्त हो ।
नाना रूप धरे विहार करते हैं घूमते-झूमते ।
होगा कौन न मुग्ध देख नभ में ऐसे घनों की छटा ।२२।

हैं ऊँचे उठते, सुधा बरसते, हैं घेरते घूमते ।
बूँदों से भरते, फुहार बनते या हैं हवा बाँधते ।
दौरा हैं करते घिरे घहरते हैं रंग लाते नये ।
क्या-क्या हैं करते नहीं गगन में ये मेघ छाये हुए ।२३।

कैसे तो पुरहूत-चाप मिलता, क्यों दामिनी नाचती।
क्यों खद्योत-समूह-से विलसती काली बनी यामिनी।
होते जो न पयोद, गोद भरती कैसे हरी भूमि की।
आभा-मंडित साड़ियाँ सतरँगी क्यों पैन्हतीं दिग्वधू।२४।

मेघों को करते प्रसन्न खग हैं मीठा स्वगाना सुना।
हैं नाना तरु-वृन्द प्रीति करते उत्फुल्लनाएँ दिखा।
आशा है अनुरागिनी जलद की, है प्रेमिका शर्वरी।
सारी वीर-बहूटियाँ अवनि की रागात्मिका मूर्त्ति हैं।२५।

क्या सातों किरणें दिवाधिपति की हैं दृश्यमाना हुईं।
किंवा वन्दनवार द्वार पर बाँधी गई स्वर्ग के।
या हैं सुन्दर साड़ियाँ प्रकृति की आकाश में सूखती।
किंवा वारिद-अंक में विलसता है चाप स्वर्गेश का।२६।

है लीला करती, ललाम बनती, है मुग्ध होती महा।
है उल्लास-विलास से विलसती, पीती सुधा सर्वदा।
होके हासमयी विकास भरती, है मोहती विश्व को।
पा राकेश-समान कान्त मुदिता राका निशा सुन्दरी।२७।

हो नाना खग-वृन्द-नाद-मुखरा प्रातः प्रभा-पूरिता।
होके पुण्य विकास से विकसिता सद्गंध से गंधिता।
ऊषा से वन रंजिता विलसिता हो शोभिता अंशु से।
होती है महि कान्त ओस-कर से पा मंजु मुक्तावली।२८।

है प्राची प्रिय लालिमा सहचरी सिन्दूर-आरंजिता।
सोने-सी कमनीय कान्ति-जननी है दिव्यता भानु की।
है आलोक-प्रसू प्रभात-सुषमा है मण्डिता दिग्वधू।
ऊषा है अनुराग-राग-निरता, है ओस मुक्तामयी।२९।

चोटी है लसती मिले कलस-सी ज्योतिर्मयी मंजुता।
होती है उसमें कला-प्रचुरता स्वाभाविकी स्वच्छता।
नाना साधन, हेतु भूत बनके हैं सिद्धि देते उसे।
है देवालय के समान गिरि के सर्वाङ्ग में दिव्यता।३०।

शिक्षा का शुचि केन्द्र, शान्त मठ है संसार की शान्ति का।
पूजा का प्रिय पीठ, कान्त थल है विज्ञप्ति के पाठ का।
है ज्ञानार्जन-धाम ओक भव के विज्ञान-विस्तार का।
पाता है गिरि भू-विभूति-चय का, धाता विभा-कीर्त्ति का।३१।

होता है अभिषेक वारिधर के पीयूष से वारि से।
नाना पादप हैं प्रसून-चय से प्रातः उसे पूजते।
सारी ही नदियाँ सभक्ति बन के होती द्रवीभूत हैं।
गाते हैं गुण सर्व उत्स गिरि का स्नेहाम्बु से सिक्त हो।३२।

ऐसा है हरिताभ वस्त्र किसका पुष्पावली से सजा।
नाना कान्ति-निकेत रत्न किसके सर्वाङ्ग में हैं लसे।
आभावान असंख्य हीरक जड़ा आलोक के पुंज-सा।
पाया है हिम का किरीट किसने हेमाद्रि-जैसा कहाँ।३३।

पक्षी रंग-विरंग के विहरते या मंजु हैं बोलते।
क्रीड़ा हैं करते कुरंग कितने, गोवत्स हैं कूदते।
नाना वानर हैं विनोद करते, हैं गर्जते केशरी।
मातंगी-दल के समेत गिरि में मातंग हैं घूमते।३४।

ऊषा-रागमयी दिशा विहँसती लोकोत्तरा लालिमा।
कान्ता चन्द्रकला कलिन्द किरणें रम्यांक राका निशा।
नाना तारक-मालिका छविमयी कादम्बिनी दामिनी।
देती हैं दिवि की विभूति गिरि को दिव्यांग देवांगना।३५।

गा-गा गीत विहंग-वृन्द दिखला केकी कला नृत्य की।
नाना कीट, पतंग भृंग करके क्रीडा मनोहारिणी।
देते हैं अभिराम-भूत गिरि की सौन्दर्य-मात्रा बढ़ा।
सीधे सुन्दर मंजु पुच्छ मृग के सर्वाङ्ग शोभा-भरे।३६।

है कैलाश कहाँ, किसे मिल सका काश्मीर-भू स्वर्ग-सा।
पाया है कब स्वर्ण-मेरु किसने, देवापगा-सी सरी।
मुक्ता हंस-निकेत मानस किसे है कान्त देता बना।
कैसे हो न हिमाद्रि उच्च सबसे, क्यों देवतात्मा न हो।३७।

दे पुष्पादि 'उदार वृत्ति' तरु की शाखा बताती मिली।
सारे निर्झर हैं अजस्र कहते स्नेहार्द्रता मेरु की।
ऊँचे शृंग उठा स्वशीश करते हैं कीर्त्ति की घोषणा।
गाती है गुण सर्वदा गिरि-गुहा शब्दायमाना बनी।३८।

गाते हैं गधर्व किन्नर कहीं, हैं नाचती अप्सरा।
वीणा है बजती, मृदंग-रव है होता कहीं प्रायशः।
दे-दे दिव्य विभूति व्योम-पथ में हैं देवते घूमते।
ऐसा है गिरि कौन स्वर्ग-सुषमा है प्राप्त होती जिसे।३९।

शोभाधाम ललाम मंजु रुत की नाना विहंगावली।
लीला - लोल लता - समूह बहुशः सत्पुष्प सुश्री बड़े।
पाये हैं किसने असंख्य विटपा स्वर्लोक-संभूत-से।
रम्योपान्त नितान्त कान्त महि में है कौन कान्तार सा।४०।

नाना मंजुल कुंज से विलसिता भृंगावली-भूषिता।
छायावान लता - वितान - वलिता पाथोज-पुंजावृता।
गुंजा - माल - अलंकृता तृणगता मुक्तावली-मंडिता।
है दूर्वादल - संकुला विपिन की श्यामायमाना मही।४१।

पेड़ों में वन की बड़ी विविधता उत्फुल्लता उच्चता।
पत्तों में फल में महा सरसता आमोदिनी मंजुता।
नाना पुष्प-समूह में विकचता सच्ची मनोहारिता।
पाते हैं कमनीयता मृदुलता कान्ता लता - पुंज में।४२।

व्यापी मंजु हरीतिमा विटप की कादम्बिनी-सी लसी।
शाखा पल्लव-पूरिता विकसिता पुष्पावली-सज्जिता।
लेती है कर मुग्ध वारि-निधि-सी हो ऊर्मिमालामयी।
नाना गुल्म-लतावती विपिन की नीलाम्बरा मेदिनी।४३।

की है कानन मध्य सिद्धि जन ने प्यारी तपःसाधना ।
पूता है वन की महा गहनता स्वर्गीय सम्पत्ति से ।
व्यापी निर्जनता विराग-निरता एकान्त आधारिता ।
होती है महनीय शान्ति-भरिता कान्तार-गंभीरता ।४४।

उल्लू का विकराल नाद बहुधा, शार्दूल की गर्जना ।
देता है न किसे प्रकंपित बना चीत्कार मातंग का ।
देखे हिंसक भीमकाय पशु की आतंककारी क्रिया ।
सन्नाटा वन का विलोक किसको हृत्कंप होता नहीं ।४५।

नाना व्याल-विभीषिका विकटता भू कंटकाकीर्ण की ।
हिंसा पाशव वृत्ति हिंस्र पशु की चीत्कारमग्ना दिशा ।
ज्वाला-माल-निपीड़िता तरु-लता धूमांधकारावृता ।
होती है भयपूरिता विपिन की कृत्या समा प्रक्रिया ।४६।

पा के दानव के समान वपुता एवं कदाकारता ।
हो के चालित चंड वायु-गति से आतंक-मात्रा बढ़ा ।
नाना काक उलूक आदि रव से हो प्रायशः पूरिता ।
देती है वन को भयावह बना दुर्वीक्ष्य वृक्षावली ।४७।

जो है हिंसकता-निकेत जिसमें है भीति-सत्ता भरी ।
जो है भूरि विभीषिका-विचलिता उत्पात-आलोड़िता ।
जो है कंटकिता नितान्त गहना आतंक-आपूरिता ।
तो कैसे वन-मेदिनी, विकटता-आक्रान्त होगी नहीं ।४८।

माली के उर की अपार ममता उन्मत्तता भृंग की।
पेड़ों की छबि-पुंजता रुचिरता छायामयी कुंज की।
पुष्पों की कमनीयता विकचता उत्फुल्लता बेलि की।
देती है खग-वृन्द की मुखरता उद्यान को मंजुता।४९।

कान्ता कंज-दृगी सरोज-वदना भृंगावली-कुंतला।
सुश्री कोकिल कंठनी भुज-लता-लालित्य-आंदोलिता।
पुष्पाभूषण-भूषिता सुरभिता आरक्त बिम्बाधरा।
दूर्वा श्यामल साटिका विलसिता है वाटिका सुन्दरी।५०।

कोई पा बहुरंग की विविधता आधार पुष्पावली।
कोई है ले लाल फूल लसिता शृङ्गारिता रंजिता।
क्या हैं सुन्दर नारियाँ बिलसती पैन्हे रँगी साड़ियाँ।
या हैं कान्त प्रसून-पुंज-कलिता उद्यान की क्यारियाँ।५१।

पा आभा दिन में दिनेश-कर से हो-हो सिता से सिता।
ले-ले कान्ति सुधांशु-कान्त-कर से हो दिव्य आभामयी।
पा के वारिद-वृन्द से सरसता वृन्दारकों से छटा।
होती है रस-सिंचिता विलसिता उल्लासिता वाटिका।५२।

हो आभामय मंद-मंद हँस के फूली लता-व्याज से।
मुक्ता से लसिता तृणावलि मिले हो दिव्य नीलाम्बरा।
आँखों को अनुराग-सिक्त, मन को है मुग्ध देती बना।
पैन्हे मंजुल मालिका सुमन की उद्यान की मेदिनी।५३।

पाता है रस जीव-मात्र किससे सर्वत्र सद्भाव से।
धारा है रस की अबाध किसके सर्वाङ्ग में व्यापिता।
हो-हो के सब काल सिक्त किससे होती रसा है रसा।
पृथ्वी में सरि-सी रसाल-हृदया है कौन-सी सुन्दरी।५४।

पाता है कमनीय अंक उसका राकेन्दु-सी मंजुता।
देती है अति दिव्य कान्ति उसको दीपावली व्योम की।
हो कैसे न विभूतिमान सरिता, हो क्यों न आलोकिता।
होती हैं रवि-बिम्ब-कान्त उसकी क्रीड़ामयी वीचियाँ।५५।

आभापूत प्रभूत मंजु रस से हो सर्वदा सिंचिता।
नाना कूलद्रमावली कुसुम से हो शोभिता सज्जिता।
लीला-आकलिता नितान्त कलिता उल्लासिता रंजिता।
भू में कौन सरी समान लसिता है दूसरी सुन्दरी।५६।

कैसे तो कितनी अनुर्वर धरा होती महा उर्वरा।
पाती क्यों फल-फूल ऊसर मही हो शस्य से श्यामला।
क्यों हो प्रान्तर कान्त लाभ करते उद्यान-सी मंजुता।
होती जो सरला सरी न सिकता सिक्ता कहाती न तो।५७।

है कान्ता रवि कान्त भूत कर से है ऊर्मि अंगच्छटा।
है शैवाल मनोज्ञ केश उसके जो पुष्प से हैं लसे।
पा के मंजु मयंक-बिम्ब बनती है चारु-चन्द्रानना।
तो है क्यों बहु-लोचना न सफरी से है भरी जो सरी।५८।

मोती पा न सके मराल उसमें हैं कंज वैसे कहाँ।
है वैसी कमनीयता सरसता औ दिव्यता भी नहीं।
वैसा निर्मल काँच-तुल्य जल भी है प्राप्त होता नहीं।
कैसे तो सर अन्य, मानसर-सा, पाता महत्ता कभी।५९।

है तेरा उर सिक्त, तू तरल है, क्यों मान लूँ मैं इसे।
तू है धीर, गँभीर है, सरस है, ऐसा तुझे क्यों कहूँ।
रोते या करते विलाप उनकी है यामिनी बीतती।
कोकी-कोक-मिलाप रोक सर तू क्यों शोक-धाता बना।६०।

दूर्वा-श्यामल भूमि-मध्य सरसी है आरसी-सी लसी।
पाते हैं उसके सुसिक्त तन में एकान्तता वारि की।
शोभा है जलराशि में विलसते उत्फुल्ल अंभोज की।
होती है प्रिय सद्म पद्मचय में पद्मासना की प्रभा।६१।

है प्रायः पर खोल-खोल उड़ती या तोय में तैरती।
या बैठी सर-कान्त-कूल पर है शृंगारती गात को।
है पीती जल या कलोल करती है लोल हो डोलती।
बोली बोल अमोल केलि-रत हो नाना विहगावली।६२।

पैन्हे वस्त्र हरे खड़े विटप हैं दृश्यावली देखते।
धीरे है घन का मृदंग बजता, है ताल देती दिशा।
यंत्रों-सा सर को निनादित बना हैं बूँदियाँ छूटती।
गाते भृंग विहंग हैं, कर उठा हैं नाचती वीचियाँ।६३।

कान्ता-केश-कलाप-से विलसते शैवाल की मंजुता ।
मीनों का बहु लोल भाव सर की लीलामयी व्यंजना ।
होगा कौन नहीं विमुग्ध किसमें होगी न उत्फुल्लता ।
देखे रंग-विरंग कंज - कलिता न्यारी तरंगावली ।६४।

है आती तितली दिखाती छटा, गाती विहंगावली ।
है माती फिरती मिलिंद-अवली पा कंज से मत्तता ।
आ के है बहुधा हवा सुरभिता अंभोज से खेलती ।
हैं न्हाती मिलती समोद सर में दिव्यांगनाएँ कहीं ।६५।

तो जाता पटका नहीं न पिटता, भाती न जो नीचता ।
जो ऊँचे चढ़के न उत्स गिरता तो चोट खाता नहीं ।
तो होगा उसका नहीं पतन क्यों जो निम्नगामी बना ।
तो चाँटे लगते नहीं मरुत के, छींटे उड़ाता न जो ।६६।

क्यों धोते मल अंक का न मिलते सोते सहस्रों उन्हें ।
क्यों बोते रस-बीज केलि-थल में, पाते निकुंजें कहाँ ।
कैसे पादप-पुंज से विलसते हो के फलीभूत वे ।
तो खोते गिरि-गात की सरसता, जो उत्स होते नहीं ।६७।

कैसे तो मिलते विचित्र विटपी लोकाभिरामा लता ।
कैसे तो कुसुमालि लाभ करती हो शस्य से श्यामला ।
क्यों पाती बहुरंजिता विलसिता आलोकिता बूटियाँ ।
पाके उत्स-समूह जो न रहती उत्साहिता अद्रिभू ।६८।

आता है सुरलोक से सलिल या धारा सुधा की बही।
होता है रव वारि के पतन का या केलि-कल्लोल है।
है उद्वेलित उत्स या प्रकृति का आनन्द-उल्लास है।
छींटे हैं उड़ते कि हैं बिखरते मोती उछाले हुए।६९।

हो-हो वारि वियोग से व्यथित क्या है सिक्त स्नेहाम्बु से।
या प्यासा अवलोक प्राणिचयको होता द्रवीभूत है।
या है भूरि पसीजता विकलता देखे दयापात्र की।
रोता है जड़ता विलोक गिरि की या उत्स आँसू बहा।७०।

होता है जल-पात-नाद अथवा है शब्द उन्माद का।
या हो आकुल है सदैव कहती कोई कथा दिग्वधू।
या देवी सरिता-प्रवाह-रव है आकाश से आ रहा।
या गाता गुण उत्स है प्रकृति का स्नेहाम्बु से सिक्त हो।७१।

चिल्लाते रहते, नहीं सँभलते, बातें नहीं मानते।
हो सीधे चलते नहीं, विचलते पाये गये प्रायशः।
क्या कोई तुमसे कहे, बहकना है उत्स होता बुरा।
पानी क्या रखते सदैव तुम तो पानी गँवाते मिले।७२।

प्यासे की धन-प्यास है न बुझती कोई पिसे तो पिसे।
लोभी-लोक विभूति-लाभ कर भी लोभी बना ही रहा।
बेचारा हिम बार-बार गल के पानी-प्रदाता रहा।
दे-दे वारि विलीन वारिद हुए, क्या उत्स तो भी भरा।७३

नाना कीट-पतंग पी जल जिये, पक्षी करोड़ों पले।
हो-हो सिक्त हुई प्रसन्न जनता तो क्या उसे दे सकी!
होती है उपकार-वृत्ति सहजा लोभोपनीता नहीं।
लाखों पेड़ सिंचे, परन्तु किससे क्या उत्स पाता रहा।७४।

सिक्ता शीतलतामयी तरलता आधारिता शब्दिता।
नाना केलि-निकेतना सरसता-सम्पत्ति-उल्लासिता।
शोभा-आकलिता अतीव ललिता लीलांक में लालिता।
उत्कंठा वर व्यंजना विलसिता है उत्स की उत्सता।७५।

है सींचा करता असंख्य तरुओं नाना तृणों को सदा।
देता है जल बार-बार बहुशः भृंगों मृगों आदि को।
सोतों का सरितादि का जनक है भू-जीवनाधार है।
तो हो वर्द्धित क्यों न उत्स वह तो उत्साह की मूर्त्ति है।७६।

ऊषा क्यों न उसे प्रदान करती आभा मनोरंजिनी।
क्यों देता न दिनेश दिव्य कर से संदीपिनी दिव्यता।
कैसे तो उससे गले न मिलती राका-निशा-सुन्दरी।
होता है गतिशील उत्स फिर क्यों उत्कर्ष पाता नहीं।७७।

क्यों लेते गिरि गोद में न उसको देते नहीं मान क्यों।
कैसे आकर वायु पास उसके पंखा हिलाती नहीं।
क्यों पाता न विकास भानु-कर से राकेन्दु से मंजुता।
जो है जीवनवान उत्स उसका उत्थान होता न क्यों।७८।

ये हैं रोग वियोग सोग फल या संताप में हैं पगे।
या हैं भावुकता-विभूति अथवा सद्भाव में हैं सने।
या हैं आकुलता-प्रसूत भय या उन्माद के हैं सगे।
या हैं नीर गिरे भरे नयन से या निर्झरों से झरे।७९।

कैसे तो अवलोकता निज छटा तारों-भरी रात में।
कैसे नर्त्तन देखता सलिल में लाखों निशानाथ का।
होती वारिधि-मध्य दृष्टिगत क्यों ज्योतिर्मयी भूतियाँ।
आईना मिलता न जो गगन को दिव्याभ अंभोधि-सा।८०।

संध्याकाल हुए व्यतीत भव में आये-अमा यामिनी।
सन्नाटा सब ओर पूरित हुए, छाये महा कालिमा।
नीचे-ऊपर अंक में उदधि के सर्वत्र भू में भरे।
तो देखें तमपुंज को प्रलय का जो दृश्य हो देखना।८१।

क्या धन्वन्तरि के समान सुकृती, क्या दिव्य मुक्तावली।
क्या आरंजित मंजु इन्द्रधनु, क्या रंभा-समा सुन्दरी।
सारे रत्न-समूह भव्य भव के अंभोधि-संभूत हैं।
क्या कल्पद्रुम,क्या सुधा,सुरगवी,क्या इन्दु,क्या इन्दिरा।८२।

होता है सित दिव्यक्षीरनीधि-सा राका सिता से लसे।
पाता है बहते हिमोपल भरे कल्लोल से भव्यता।
जाता है बन कान्त मत्स्य-कुल की आलोक-माला मिले।
देखी है किसने कहाँ उदधि-सी स्वर्गीय दृश्यावली।८३।

आभा से भर के सतोगुण हुआ सर्वाङ्ग में व्याप्त है ।
या सारा जल हो गया सित बने क्षीराब्धि के दुग्ध-सा ।
या भू में, नभ में, समुद्र-तन में है कीर्त्ति श्री की भरी ।
या राका-रजनी-विभूति-बल से वारीश है राजता ।८४।

है उत्ताल तरंग में विलसती उद्दीप्त शृंगावली ।
किंवा हैं जल-केलि-लग्न जल में ज्योतिष्क आकाश के ।
किंवा हीरक-मालिका उदधि में है अर्बुदों शोभिता ।
किंवा हैं हिम के समूह बहुशः पाथोधि में पैरते ।८५।

जैसे हैं तमपुंज भूरि भरते पाथोधि के अंक में ।
वैसे ही बहु दिव्य मीन विधि ने अंभोधि को हैं दिये ।
आये मूर्त्तिमती मसी सम निशा घोरांधकारावृता ।
विद्युद्दीप-समान है दमकती वारीश-मत्स्यावली ।८६।

ऊषा-से अनुराग-राग-लसिता शोभा मनोरंजिनी ।
स्वर्णाभा रवि के सहस्र कर से राका निशा से सिता ।
भू से भूरि विभूति पूत विधु से सच्ची सुधा-सिक्तता ।
पाता है रस-धाम वारि-धर से वारीश-मुक्तावली ।८७।

आये घोर विभावरी उदधि में तेजस्विता है भरी ।
या आलोक-निकेत मीन-कुल हैं कल्लोल में डोलते ।
किंवा मंथन से पयोधि-पय के विद्युद्विभा है जगी ।
या व्यापी वडवाग्नि-दीप्ति-बल से दीपावली है बली ।८८।

नीले व्योम-समान है विलसता, है मोहता कान्त हो ।
है आवर्त्त-समूह से थिरकता, है नाचता मत्त हो ।
है पाता रवि से अलौकिक विभा, राकेश से दिव्यता ।
है शोभामय सिंधु की सलिलता लावण्यलीलामयी ।८९।

होती है गुरु गर्जनाति-विकटा विद्युन्निपाताधिका ।
देखे तुंग तरंग-भंग भरती है भीति सर्वाङ्ग में ।
होते हैं बहु पोत भग्न पल में आवर्त्त के गर्त्त में ।
भू में भूरि विभीषिका भरित है अंभोधि अंभोधि-सा ।९०।

है सर्वाधिक वारिलाभ करता पाथोधि पर्जन्य से ।
सारा तोय-समूह सर्व नदियाँ देतीं उसे सर्वदा ।
तो भी है वह अल्प भी न बढ़ता, सीमा नहीं त्यागता ।
पाते हैं किसमें रसाधिपति-सी गंभीरता धीरता ।९१।

पानी है रखता, गँभीर रहता, है धीरता से भरा ।
जाती पास नहीं कदापि कटुता अस्निग्धता क्षुद्रता ।
देखी नीरसता कभी न उसमें, पाई नहीं शुष्कता ।
है मर्यादित कौन नीरनिधि-सा संसार में दूसरा ।९२।

पाई श्री हरि ने, तुरंग रवि ने, मातंग देवेन्द्र ने ।
सारे उत्तम रत्न कल्पतरु से वृन्दारकों ने लिये ।
देखो मन्थन से अगाध निधि के क्या दानवों को मिला ।
होती है वर बुद्धि हा जगत में सर्वार्थ की साधिका ।९३।

टाली भीति नृलोक की, गरलता पाथोधि की दूर की ।
थोड़ा लेकर वक्र अंश शशि का राकेशता दी उसे ।
क्या पाया शिव ने सिवा गरल के दे दी सुरों को सुधा ।
होते हैं महनीय कीर्त्ति महि में माहात्म्य की मूर्त्तियाँ ।९४।

नाना क्रूर प्रचंड जन्तु कुल के उत्पीडनोत्पात से ।
आता है बहु झाग सिंधु-मुख से क्या क्षुब्धता के बढ़े ।
किंवा सात्विक भाव क्रुद्ध उर से उत्क्षिप्त है हो रहा ।
होता फेनिल है समुद्र बहुधा या शेष फूत्कार से ।९५।

बारंबार सुना विकम्पितकरी अत्युत्कटा गर्जना ।
नाना दृश्य दिखा-दिखा प्रलय के आवर्त्त-माला मिले ।
होती है विकराल मूर्त्ति निधि की अत्यंत त्रासप्रसू ।
हो आन्दोलित चंड वायुबल से, कल्लोल से लोल हो ।९६।

छोटे हैं बनते विशाल, लघुता पाते महाद्वीप हैं ।
डूबे देश कई, बनी मरु मही भू शस्य से श्यामला ।
कैसी है यह नीति सिंधु ! तुममें क्या है महत्ता नहीं ।
होते हैं जल-मग्न वे नगर जो थे स्वर्ग-जैसे लसे ।९७।

खाते हैं लघु को बड़े रिपु बने हैं निर्बलों के बली ।
नाना आश्रित व्यर्थ कष्ट कितने हैं भोगते सर्वदा ।
हो ऐसे ममता-विहीन निधि क्यों होके महाविक्रमी ।
सारे जंतु-समूह मत्स्य-कुल के हो जन्मदाता तुम्हीं ।९८।

तो क्या हैं गिरि-तुल्य तुंग लहरें क्या है महागर्जना ।
है रत्नाकरतातितुच्छ विभुता है व्यर्थ आवर्त्त की ।
तो है हेय अगाधता सरसता गंभीरता सिंधु की ।
कष्टों से बहु आर्त्त मत्स्य-कुल जो है त्राण पाता नहीं ।९९।

पोतों को कर मग्न भग्न कब है होती समुद्विग्नता ।
लाखों का कर प्राण-नाश उसको रोमांच होता नहीं ।
लाती हैं अवसन्नता न उसमें संहार-दृश्यावली ।
जैसा निदयता-निकेत निधि है, है वज्र वैसा कहाँ ।१००।

हो सम्मानित भव्य भाव प्रतिभू हो भूतियों से भरा ।
पापों का फल पा सका सब सदा दुर्वृत्तियाँ हैं बुरी ।
सारे रत्न छिने, विलोड़ित हुआ, है दग्ध होता महा ।
पी डाला मुनि ने, तिरस्कृत बना, पाथोधि बाँधा गया ।१०१।

कैसे मान सकें तुझे सरस, तू संताप-सन्दोह है ।
जो तू है पवि-सा, तुझे तरलता-सर्वस्व कैसे कहें ।
हों ऊँची उठती, परन्तु निधि ! हैं तेरी तरंगें बुरी ।
होते हैं बहु पोत भग्न जिनसे, है मग्न होती तरी ।१०२।

हैं नाना विकराल जन्तु उसमें, आपत्तियाँ हैं भरी ।
है संहारक, मूर्त्तिमन्त यम है, आतंक का केन्द्र है ।
तो भी है यह बात सत्य भव का कोई यशस्वी सुधी ।
पारावार अपार दिव्य गुण का है पार पाता नहीं ।१०३।

होती है विभुता-विभूति विदिता सद्रत्न-माला मिले ।
देती है बतला सदैव गुरुता गंभीरता गर्जना ।
गाती है गुण-मालिका सरव हो सारी तरंगावली ।
राका रम्य निशा सिता जलधि की सत्कीर्त्ति की मूर्त्ति है ।१०४।

कोई पावन पंथ का पाथिक हो या हो महा पातकी ।
कोई हो बुध वन्दनीय अथवा हो निन्दनीयाग्रणी ।
कोई हो बहु आर्द्रचित्त अथवा संहार की मूर्त्ति हो ।
योग्यायोग्य-विवेक है न रखती, है वीर भोग्या धरा ।१०५।

जो देखे इतिहास-ग्रंथ कितने, बातें पुरानी सुनीं ।
सारे भारत के रहस्य समझे, रासो पढ़े सैकड़ों ।
तो पाया कहते सहस्र मुख से संग्राम-मर्मज्ञ को ।
वे थे भू-अनुरक्त हाथ जिनके आरक्त थे रक्त से ।१०६।

भूलेगा धन से भरे भवन को भाये हुए भोग को ।
भ्राता को, सुत को, पिता प्रभृति को, भामा-मुखाम्भोज को ।
भावों की अनुभूति को, विभव को, भूतेश की भक्ति को ।
भू-स्वामी सब भूल जाय उसको, भू भूल पाती नहीं ।१०७।

आरक्ता कलिकाल-मूर्त्ति कुटिला काली करालानना ।
भूखी मानव-मांस की भय-भरी आतंक-आपूरिता ।
उन्मत्ता करुणा-दया-विरहिता अत्यन्त उत्तेजिता ।
लोहू से रह लाल है लपकती भू-लाभ की लालसा ।१०८।

देशों की, पुर-ग्राम की, नगर की देखे बड़ी दुर्दशा ।
पाते हैं उसको महा पुलकिता काटे गला कोटिशः ।
लीलाएँ अवलोक के प्रलय की है हर्ष होता उसे ।
पी-पी प्राणिसमूह-रक्त महि की है दूर होती तृषा ।१०९।

हैं सारे पुर ग्राम धाम जलते, हैं दग्ध होते गृही ।
है नाना नगरी विभूति बनती वर्षा हुए अग्नि की ।
भू ! तेरे अविवेक का कुफल है या है क्षमाशीलता ।
जो ज्वाला बन काल है निकलती ज्वालामुखी-गर्भ से ।११०।

जो निर्जीव बनी समस्त जनता हो मज्जिता राख में ।
सारे वैभव से भरे नगर जो ज्वालामुखी से जले ।
तो क्या हैं सर के समूह सरिता में हैं कहाँ सिक्तता ।
तो है सागर में कहाँ सरसता, कैसे रसा है रसा ।१११।

हो-हो दग्ध बनी विशाल नगरी दावाग्नि-क्रीड़ास्थली ।
लाखों लोग जले-भुने, भवन की भीतें चिता-सी बलीं ।
भू ! तेरे अवलोकते प्रलय क्यों ज्वालामुखी यों करे ।
क्यों होते जल-राशि पास जगती यों ज्वालमाला रहे ।११२।

दोषों को क्षम सर्वदा जगत में जो है कहाती क्षमा ।
क्यों हो-हो वह कम्पिता प्रलय की दृश्यावली दे दिखा ।
कैसे सो वसुधा विरक्त बन दे ज्वालामुखी से जला ।
जो पाले सुजला तथैव सुफला हो शस्य से श्यामला ।११३।

नाना दानवता दुरन्त नर की, ज्वालामुखी-यत्रणा ।
ओलों का, पवि का प्रहार, रवि के उत्ताप की उग्रता ।
तो कैसे सहती समुद्र-शठता दुर्वृत्ति दावाग्नि की ।
तो होती महती न, जो क्षिति में होती क्षमाशीलता ।११४।

होती है हरिता हरापन मिले न्यारे हरे पेड़ का ।
काली है करती अमा, अरुणता देती उषा है उसे ।
प्रायः है करती विमुग्ध मन को हो शस्य से श्यामला ।
पाके दिव्य सिता विभूति बनती है दुग्ध-धौता धरा ।११५।

आराध्या बुध-वृन्द की विबुधता आधारिता वन्दिता ।
है विज्ञान-विभूति भूति भव की सद्भाव से भाविता ।
है सद्बुद्धि-विधायिनी गुण-भरी है सर्व-विद्यामयी ।
है पात्री प्रतिपत्ति की प्रगति की है सिद्धि दात्री धरा ।११६।

पाता गौरव है पयोधि पहना मुक्तावली-मालिका ।
गाती है जल कीर्त्ति कान्त स्वर से सारी विहंगावली ।
देते हैं उपहार पादप खड़े नाना फलों को लिये ।
पूजा करती है सदैव महि की उत्फुल्ल पुष्पावली ।११७।

आ आ के घन हैं सुधा बरसते, हैं भानु देते विभा ।
होती है वन-भूति धन्य दिखला सर्वाङ्ग दृश्यावली ।
पाता है कमनीय अंक गिरि से दिव्याभ रत्नावली ।
पाये शुभ्र सिता सदैव बनती है भूमि दिव्याम्बरा ।११८।

पाती है कमनीय कान्ति विधु से, उत्फुल्लता पुष्प से ।
देता चन्दन है सुवास तन को, है चाँदनी चूमती ।
लेती है मधु से महा मधुरिमा मानी मनोहारिता ।
होती है सरसा सदैव रस से भींगे रसा सुन्दरी ।११९।

भू में हैं जनमे, विभूति-बल से भू के बली हो सके ।
जागे भाग अनेक भोग भव के भू-भाग ही से मिले ।
आये काल भगे कहीं न मर के भू-अंक में हैं पड़े ।
भू से भूप पले सदैव कब भू भूपाल पाले पली ।१२०।

देता है यदि भौम साथ तज तो साथी मिला सोम-सा ।
होता है यदि वज्रपात बहुधा तो है क्षमा में क्षमा ।
जो है भू सरसा, सहस्रकर के उत्ताप को क्यों सहे ।
जो है पास सुधा, सहस्र-फन से क्यों हो धरा शंकिता ।१२१।

लाखों पाप मिले समाधि-रज में या हैं चिता में जले ।
आई मौत, बला मनुष्य सिर की है प्रायशः टालती ।
लेती है तन ही मिला न तन में या राख में राख ही ।
भूलों की बहु भूल-चूक पर भी भू धूल है डालती ।१२२।

संसिक्ता सरसा सरोज-वदना उल्लासिता उर्वरा ।
नाना पादप-पुंज - पंक्ति-लसिता पुष्पावली - पूरिता ।
लीला-आकलिता नितान्त ललिता संभार से सज्जिता ।
है मुक्तावलिमंडिता मणियुता आमोदिता मेदिनी ।१२३।

था सिंहासन रत्नकान्त जिनका, कान्तार में वे मरे ।
थे जो स्वर्गविभूति, गात उनके हैं भूमिशायी हुए ।
वे सोये तम में पसार पग जो आलोक थे लोक के ।
वे आये मर तीन हाथ महि में भू में समाये न जो ।१२४।

है अंगारक-सा कुमार उसका तेजस्विता से भरा ।
सेवा है करता मयंक, सितता देती सिता है उसे ।
है रत्नाकर अंक-रत्न, दिव है देता उसे दिव्यता ।
है नाना स्वर्गीय भूतिभरिता है भाग्यमाना मही ।१२५।

दी है भूधर ने उमासम सुता दिव्यांग देवांगना ।
पाई है उसने पयोधि-पय से लोकाभिरामा रमा ।
मिट्टी से उसको मिली पति-रता सीता समाना सती ।
है मान्या महिमामयी मति-मती धन्या वदान्या धरा ।१२६।

हो पाते यदि भद्र,भूत-हित को जो भूल जाते नहीं ।
जो भाते भव भले भाव उनको, जो भागती भीरुता ।
जो होती उनमें नहीं कुमति की दुर्भावनाएँ भरी ।
तो भारी बनते उभार जन के भू-भार होते नहीं १२७।

लाखों भूप हुए महा प्रबल हो डूबे अंहभाव में ।
भू के इन्द्र बने, तपे तपन-से, डंका बजा विश्व में ।
तो भी छूट सके न काल-कर से, काया मिली धूल में ।
हो पाई किसकी विभूति यह भू, भू है भयों से भरी ।१२८।

आँखें हैं मुँदती, मुँदें, अवनि तो होगी सदा सज्जिता ।
कोई है मरता, मरे, पर मही होगी प्रसन्नानना ।
साँसें हैं चलती, चलें, वसुमती यों ही रहेगी खिली ।
अन्यों का दुख, हीन हो हृदय से कैसे धरा जानती ।१२९।

जायेगी मुँद आँख एक दिन, हो शोभामयी मेदनी ।
छूटेगी यह देह हो अवनि में संजीवनी-सी जड़ी ।
होगा नाश अवश्यमेव, महि में हो स्वर्ग की ही सुधा ।
होना है तन भूति-भूति नर को, हो भूति से भू भरी ।१३०।

डूबे क्यों न पयोधि में, उदर में तेरे समाये न क्यों ।
टूटा क्यों न पहाड़, क्यों न मुख में ज्वालामुखी के पड़े ।
कैसा है यह चाव, भाव इनके क्यों हैं सहे जा रहे ।
होता है दुख देख, भूमि ! तुझमें भू-भार ही हैं भरे ।१३१।

तो होता सर सिंधु, शान्त बनता ज्वालामुखी सिक्त हो ।
होते सर्व प्रपंच तो न दव के, आतीं न आपत्तियाँ ।
कोई क्यों जलता, न वारिनिधि में कोई कहीं डूबता ।
जो होती जड़ता न, भाव अपना जो भूल पाती न भू ।१३२।

क्या पूछूँ, पर मानता मन नहीं पूछे, बिना, क्या करूँ ।
क्या आँधी, बहु वात-चक्र, वसुधे ! तेरे दुरुच्छ्वास हैं ।
क्या पाथोधि-प्रकोप कोप तव है, है गर्जना भर्त्सना ।
है ज्वाला वह कौन जो धरणि है ज्वालामुखी में भरी ।१३३।

संतापाग्नि सदैव है, निकलती ज्वालामुखी-गर्भ से ।
आहें है पवमान कोप, निधि का उन्माद उद्वेग है ।
भूपों की पशुता-प्रवृत्ति, मनुजों की दानवी वृत्ति से ।
होती है गुरु पाप-भार-पवि से कम्पायमाना मही ।१३४।

माता-सी है दिव्य मूर्त्ति उसकी नाना महत्तामयी ।
सारी ऋद्धि समृद्धि सिद्धि उससे है प्राप्त होती सदा ।
क्या प्राणी, तरु क्या, तृणादि तक की है अन्नपूर्णा वही ।
है सत्कर्मपरायणा हितरता, है धर्मशीला धरा ।१३५।

तृतीय आलाप

अन्तर्जगत्

शार्दूल-विक्रीडित

होता है मधु स्वयं मुग्ध किसकी देखे मनोहारिता।
पाती है महि में कहाँ विकचता पुष्पावली ईदृशी।
ऐसी है कलिता द्रुमावलि कहाँ, कान्ता लता है कहाँ।
लोकों में नयनाभिराम मन-सा आराम है कौन सा।१।

होती है बहु रत्न-राजि-रुचिरा मुक्तावली-मंडिता।
लीला मूर्त्तिमती अतीव ललिता उल्लासिता रंजिता।
नाना नर्त्तन-कला-केलि-कलिता आलोक-आलोकिता।
मंदोदोलित सिंधु-तुल्य मन की कान्ता तरंगावली।२।

होती है शशि-कला-कान्त रवि की रम्यांशु-सी रंजिता।
ऊषा-सी अनुराग-राग-लसिता प्रातः प्रभोद्भासिता।
दिव्या तारक-मालिका-विलसिता नीलाभ्र-शोभांकिता।
रंगारंग छटा-निकेत मन की नाना तरंगावली।३।

जो हो पातक-मूर्त्ति जो भरित हो पापीयसी पूर्त्ति से ।
पाके ताप अतीव भूमि जिससे हो भूरि उत्तापिता ।
जो हो दानवता विभूति जिसमें दुर्भावना हो भरी ।
पूरी हो न प्रभो ! कभी मनुज की ऐसी मनोकामना ।४।

है चिन्तामणि चिन्तनीय विदिता है कौस्तुभी कल्पना ।
है कल्पद्रुम-मर्म ज्ञात सुर-गो की गीतिका है सुनी ।
है क्या पारस ? है रहस्य समझा, बातें गढ़ी हैं गई ।
ये क्या हैं ? मन के प्रतीक अथवा हैं मानसी प्रक्रिया ।५।

कैसे तो मचले न क्यों न बहके कैसे सुनाई सुने ।
कैसे तो बिगड़े बने न कहके बातें बड़ी बेतुकी ।
कैसे तो हठ ठान के न तमके सारी बुराई करे ।
ताने तो फिर क्यों भला न मन जो माने मनाये नहीं ।६।

छूटी मादकता कभी न मद की, है दंभवाला बड़ा ।
मानी है, इतना ममत्व-रत है, जो मान का है नहीं ।
घूमा है करता प्रमाद - नभ में, उन्माद से है भरा ।
प्रायः है बनता प्रमत्त मन की जानी नहीं मत्तता ।७।

देखेंगे दृग रूप, देख न सक तो दृष्टि का दोष है ।
जिह्वा रसकामुका रसनता चाहे बची हो न हो ।
चाहेगी ललना ललाम, ललना चाहे न चाहे उसे ।
है काया कस में न किन्तु मन की माया नहीं छूटती ।८।

आँखें हैं कस में न, रूप-शशि की जो हैं चकोरी बनी ।
हो जिह्वा रस-लुब्ध स्वाद - घन की जो है हुई चातकी ।
भाता है विषयोपभोग उसको जो कंज के भृंगसा ।
टूटेगा जग-जाल तो न, मन जो जंजाल में है फँसा ।९।

देते हैं पादप प्रमोद हिलते प्यारे हरे पत्र - से ।
लेती है कलिका लुभा विलस के हैं बेलियाँ मोहती ।
रीझा है करता विलोक तृण को, दूर्वा-दलों की छटा ।
होता मानस है प्रफुल्ल लख के उत्फुल्ल पुष्पावली ।१०।

मोरों का अवलोक नर्त्तन स्वयं है नाचता मत्त हो ।
गाता है बहु गीत कंठ अपना गाते खगों से मिला ।
होता है मन महा मुग्ध पिक की उन्मुक्त तानें सुने ।
देखे रंग-बिरंग की विहरती नाना विहंगावली ।११।

हो ऊँची, नत हो, कला-निरत हो, हैं नाचती मत्त हो ।
देती हैं बहु दिव्य दृश्य दिखला हो भूरि उल्लासिता ।
हैं मंदानिल - दोलिता सुलहरें, हैं भीतियों से भरी ।
हैं कल्लोल- समान लोल मन की लीलामयी वृत्तियाँ ।१२।

कैसे व्यंजन - स्वाद जान सकती, क्यों रीझती खा उसे ।
क्यों मीठे फल तो विमुग्ध करते, क्यों दुग्धता मोहती ।
कैसे तो रस के विभेद खुलते, क्यों ज्ञात होते किसे ।
क्यों होती रसना रसज्ञ, मन जो होता रसीला नहीं ।१३।

क्यों तो चंचलता दिखा मचलते सीधे नहीं ताकते।
कैसे तो अड़ते कटाक्ष करते क्यों तीर देते चला।
क्यों चालें चलते बला - पर बला लाते दिखाते फिरे।
जो मानी मन मानता नयन तो कैसे नहीं मानते।१४।

जो पाये वन - फूल, फूल बन ले, काँटे न बोता फिरे।
क्यों हो स्वार्थ-प्रवृत्ति-बेलि बहुधा नेत्राम्बु से सिंचिता।
होता आग्रह - अंध है हित उसे तो सूझता ही नहीं।
क्यों है तू हठ ठानता मन-कही क्यों है नहीं मानता।१५।

कोई है अपना न, स्वप्न सब है, संसार निस्सार है।
काया है किस काम की, जलद की छाया कही है गई
है सम्पत्ति विपत्ति, राज रज है, है भूति तो भूति ही।
क्यों यों है मन! तू उदास? विष है ऐसी उदासीनता।१६।

जो काली अलकें विलोक ललकें लालायिता ही रहीं।
देखे लोचन लोच है ललचता जो हो महा लालची।
जो गोरा तन कंज मंजु मुखड़ा है मत्त देता बना।
कैसे तो मथता न काम मन को माया दिखा मन्मथी।१७।

भाती है उतनी न भूति जितनी भावों भरी भामिनी।
प्यारी है उतनी न भक्ति जितनी भ्रू - भंगिमा-पंडिता।
मीठी है उतनी सुधा न जितनी है ओष्ठ की माधुरी।
क्यों हो गौरव-धाम, काम मनको है कामिनी काम से।१८।

बेढंगे सिर पैठा बात कहते बुल्ले बिलाते मिले।
पाये पक्ष पहाड़ जो न सँभले तो पक्ष काटे गये।
खाते हैं मुँह की सदैव बहके वे हैं बुझे जो बले।
ले दंभी मन सोच ध्वंस प्रिय क्यों विध्वंस होगा नहीं।१९।

दो क्या विंशति बाँह का वध हुआ है स्वर्णलंका कहाँ।
हो गर्वान्ध सहस्रबाहु बिलटा उत्पीड़नों में पड़ा।
दंभी तू मन हो न भूलकर भी है दंभ तो दंभ ही।
होगा गर्व अवश्य खर्व, न रहा कंदर्प का दर्प भी।२०।

आती है बहुधा विपत्ति, वश क्या, क्यों धीरजे धीरता।
कोई चाल चले, चले, विचलते क्यों बुद्धिवाले रहें।
वैरी वैर करे, करे, विकल हो क्यों वीर की वीरता।
क्यों निश्चिन्त रहे न चित्त! नित तू, चिन्ता चिता-तुल्य है।२१।

सोना है करती कुधातु अय को है सिद्धि सत्तामयी।
होती है उसकी विभूति - बल से पूरी मनोकामना।
जाती है बन दिव्य ज्योति तम में है मोहती मंजु हो।
है चिन्तामणि के समान रुचिरा चिन्ता चिता है नहीं।२२।

हो पाई वश में नहीं सबल हो जो वासनाएँ बुरी।
हो-हो के कमनीय कान्त न बनी जो कामना काम की।
जो आँखें न खुलीं प्रबुद्ध कहला जो हैं प्रपंची छिपे।
तो क्या चेतनता अचिन्त्य पटुता क्या चित्त की चातुरी।२३।

रस्सी साँप बनी, सदैव तम में दीखे खड़े भूत ही।
पत्ते के खड़के भला कब नहीं हैं कान होते खड़े।
काँपा है करता, हुए हृदय में आतक की कल्पना।
जाता त्रास नहीं, सशंक मन की शंका नहीं छूटती।२४।

सारे प्रेत-प्रसंग भ्रान्तिमय हैं, हैं कल्पना से भरे।
खोजे भी तरु के तले तिमिर में क्या हैं चुड़ैलें मिलीं।
देखा दृष्टि-विवेक ने, पर कहीं बैताल दीखे नहीं।
होता है भयभीत व्यर्थ मन! तू, है भूत भू में कहाँ।२५

पेड़ों में भ्रमते फिरे तिमिर में बागों बनों में बसे।
रातें बीत गईं श्मशान-महि में शंका - स्थलों में रहे।
पाया भूत कहाँ, कहीं न फिरती देखी गई भूतनी।
शिक्षा है अनुभूत भूत - भय की बातें वृथा भूत हैं।२६।

है रोता, हँसता, प्रफुल्ल बनता, होता कभी मत्त है।
हो पाथोधि - तरंगमान नभ के तारे कभी, तोड़ता।
जाता है बन भूति भूतप कभी, पाता विधाता कभी।
कैसे तो न करे प्रपंच मन! जो तू है प्रपंची महा।२७।

भू में कौन अनर्थ अर्थवश हो तूने किया है नहीं।
तेरी पापप्रवृत्ति ने प्रबल हो पीसा नहीं है किसे।
तेरा देख महाप्रकोप महि क्या होती नहीं कम्पिता।
जो है पातक - प्रेम - मूढ़ मन! तो तू है महा पातकी।२८।

है गोलोक कहाँ, विभूति उसकी है दृष्टि आती नहीं।
है बैकुण्ठ कहाँ ? कहाँ शिवपुरी ? है स्वर्ग-भू भी कहाँ।
पाया है किसने कहाँ सुरगवी या नन्दनोद्यान को।
ये हैं कल्पक कान्त भूत मन की लोकोत्तरा भूतियाँ।२९।

जो है संयमशील, वृत्ति जिसकी है दिव्य ज्ञानात्मिका।
पापों को तज जो सदैव करता है पुण्य के कार्य ही।
जो है मुक्त प्रपंचजात रुज से, है मुक्त प्राणी वही।
क्या है मुक्ति ? विकारवद्ध मन की उन्मुक्ति ही मुक्ति है।३०।

क्या है ब्रह्म?स्वरूप क्या प्रकृतिका?क्या विश्व की है क्रिया?
क्या है ज्ञान, विवेक, बुद्धि अथवा क्या पाप या पुण्य है।
क्यों होता इनका विचार, इनको कैसे सुधी जानते।
जो होता मन ही न तो मनन क्यों होता किसी तत्त्व का।३१।

हैं नाना कृतियाँ विभूति उसकी हैं इङ्गितें नीतियाँ।
है विज्ञान विवेक मानसिकता है भक्ति कान्ता क्रिया।
है धाता रमणीयता मधुरता लोकोत्तरा प्रीतिका।
दासी है भव-भूति मुक्त मन की, हैं सेविका मुक्तियाँ।३२।

हैं सारी निधियाँ रता अनुगता, सम्पत्ति है आश्रिता।
हैं ब्रह्मांड - विभूतियाँ सहचरी, हैं शासिता शक्तियाँ।
हैं संसार - पदार्थ हस्तगत - से, हैं वस्तुएँ स्वीकृता।
है सेवारत सिद्धि, सिद्ध मन की है सिद्धियाँ सेविका।३३।

ऊषा कान्त कपोल, भानु - किरणें आलोकिता रंजिता।
भू के रंग-विरंग पुष्पतरु की श्यामाभिरामा छटा।
नागों की ललितांगता रुचिरता कैसे नहीं मोहती।
है रंगीन बने त्रिलोक, मन की रंगीनियों से रँगे।३४।

क्या हैं ज्ञान, विवेक, बुद्धिबल क्या, ये मानसोत्पन्न हैं।
क्या हैं चिन्तन-शक्तियाँ? मनन क्या! क्या तर्कनाएँ सभी।
जो हैं वे सब हैं विभूति उसकी या हैं उसी की क्रिया।
कैसे जाय कही महान मन की सत्ता-इयत्ता कभी।३५।

होता कम्पित था सुरेश जिनसे जो विश्व-आतंक थे।
थे वृन्दारक-वृन्द-वंद्य भव में जो भूति-सर्वस्व थे।
वे हैं आज कहाँ कृतान्त-मुख ही में हैं समाये सभी।
संसारी समझे, कहे न फिर क्यों संसार निस्सार है।३६।

तारे हैं पद चूमते, तरणि में है तेज मेरा भरा।
मैं हूँ विश्व-विभूति भूतपति भी है भीति से काँपता।
क्या हैं ये दिवि देव दिव्य मुझसे? मैं दिव्यता-नाथ हूँ।
मैं हूँ अन्तक का कृतान्त, मैं ही श्रीकान्त-सा कान्त हूँ।३७।

खोले भी खुलते नहीं नयन हैं, क्यों बन्द ऐसे हुए।
हारे लोग जगा-जगा न, तब भी क्यों नींद है टूटती।
क्यों हैं आलस से भरे, न सुनते हैं दूसरों की कही।
खोके भी सुधि देह गेह जन की हैं लोग क्यों सो रहे।३८।

क्यों से।चूँ जब सोच हूँ न सकता, जाऊँ कहाँ, क्या करूँ।
काटे है कटता न बार बहुधा मैं हूँ महा ऊबता।
होती है गत रात तारक गिने, है नींद आती नहीं।
होते चेत, अचेत है चित हुआ, चिन्ता चिता है बनी।३९।

धू-धू है जलती विपन्न करती है धूम की राशि से।
आँचें दे लपटें उठा हृदय में है आग बोती सदा।
देती है कर भस्म गात-सुख को, मज्जा लहू मांस को।
चेते, है जन-चेत में धधकती, है चित्त चिन्ता चिता।४०।

पाती जो न प्रीति प्राणपति में तो प्रीति होती नहीं।
जो होते रस-हीन तो सरसता क्यों साथ देती सदा।
जो होती उनमें नहीं सदयता होते द्रवीभूत क्यों।
जो होता उर ही न सिक्त, दृग में आँसू दिखाते नहीं।४१।

लेती है वह लुभा लोभ-मन को, है मोह को मोहती।
जाती है बन कोप की सहचरी, है काम के काम की।
है पूरी करती अपूर्व कृति से वांछा अहंकार की।
कैसे तो न करे प्रपंच जब है धी पंच-भूतात्मिका।४२।

वे हैं भीत बलावलोक पर का, जो थे बड़े ही बली।
देखे दर्पित सैन्य-व्यूह जिनका दिग्पाल थे काँपते।
वे हैं आज बचे हुए दशन के नीचे दबा दूब को।
जो तोड़ा करते दिगन्त दमके दिग्दन्ति के दंत को।४३।

ऊँचे भाल विशाल दिव्य दृग में भ्रू-भंगिमा भूति में ।
नासा-कुंचन में कपोल युग में लाली-भरे होठ में ।
नाना हास-विलास कंठ-रव में अन्यान्य शेषाङ्ग में ।
बाला बालक चित्त की चपलता है चारुता अर्चिता ।४४।

बातें हैं उसको पसंद अपनी, क्यों दूसरों की सुने ।
जो मैं हूँ कहता उसे न करके है भागती जी बचा ।
है रूठा करती कभी झगड़ती है तान देती कभी ।
थी मेरी मति तो नितान्त अचला यों चंचला क्यों हुई ।४५।

होता है पल में विकास, पल में है दृष्टि आती नहीं ।
छू के है बहु जीव प्राण हरती, है नाचती नग्न हो ।
कोई बात सुने सहस्र श्रवणों में है उसे डालती ।
देखी है चपला समान चपला भ्रू-दृष्टि ने क्या कहीं ।४६।

नेता हैं पर नीति स्वार्थ-रत है, है कीर्त्ति की कामना ।
प्यारा है उनको स्वदेश, पर है बाना विदेशी बना ।
वांछा है रँग जाय भारत-धरा योरोप के रंग में ।
है सच्चा यदि देश-प्रेम यह तो है देश का द्रोह क्या ।४७।

है सत्कर्म-निकेत धर्म-रत है, है सत्यवक्ता सुधी ।
है उच्चाशय कर्मवीर सुकृती सत्याग्रही संयमी ।
है विद्या वर विज्ञता सदन, है धाता सदाचारिता ।
तो होता दिवि देव जो मनुज में होती न मोहांधता ।४८।

'मेरा' का महि में महान् पद है, 'मेरा' महामंत्र है ।
देखे हैं सब राव-रंक किसका प्यारा 'हमारा' नहीं ।
जादू है उनका सभी पर चला, हैं त्याग बातें सुनीं ।
ऐसा मानव हो मिला न ममता-माया न मोहे जिसे ।४९।

व्यापी है विभु की विभूति भव में भू-भूति में भूत में ।
तारों में, तृणपुंज में, तरणि में, राकेश, रेणु में ।
पाई व्यापक दिव्य दृष्टि जिसने धाता-कृपा-वृष्टि से ।
पाता है वह पत्र-पुष्प तक में सत्ता-महत्ता पता ।५०।

बातें क्यों करते कदापि मुँह भी तो खोल पाते नहीं ।
कोई काम करें, परन्तु उनको है काम से काम क्या ।
खायेंगे भर-पेट नींद-भर तो सोते रहेंगे न क्यों ।
लेते हैं अँगड़ाइयाँ सुख मिले वे खाट हैं तोड़ते ।५१।

तो कैसे चल हाथ-पाँव सकते, चालें नहीं भूलते ।
तो कैसे अँगड़ाइयाँ न अड़तीं, आती जम्हाई न क्यों ।
तो वे टालमटोल क्यों न करते, हीले न क्यों ढूँढ़ते ।
जो है आलस-चोर संग, श्रम से तो जी चुराते न क्यों ।५२।

थू-थू हैं करते विलोक रुचि को वे जो बड़े दान्त हैं ।
छी-छी की ध्वनि है अजस्र पड़ती आ-आ उठे कान में ।
देखे आनन की अभिज्ञ जनता है नेत्र को मूँदती ।
होती है मति, पाप-पंथ-रत की है ग्लानि होती नहीं ।५३।

पाते हैं तम में अड़ी दनुज की वक्कानना मूर्त्तियाँ ।
होती हैं तरु के समीप निशि में नाना चुड़ैलें खड़ी ।
बागों में विकटस्थलों विपिन में हैं भूत होते भरे ।
है शंकामय सर्व सृष्टि बनती शकालु शंका किये ।५४।

क्यों होवे तरु कम्पमान, लतिका म्लाना कभी क्यों बने ।
क्यों वृन्दारक हो विपन्न, मलिना क्यों देवबाला लगे ।
क्यों होवे अप्रफुल्ल कज दलिता क्यों पुष्पमाला मिले ।
आशंका मन को न हो, न मति को शंका करे शंकिता ५५।

है वैकुंठ-विलासिनी प्रियकरी, है कीर्त्ति कान्ता समा ।
हैं सारी जन-शक्तियाँ सहचरी, हैं भूतियाँ तद्गता ।
है वांछा अनुगामिनी, सफलता है बुद्धिमत्ताश्रिता ।
दासी है भव-ऋद्धि सत्य श्रम की, हैं सेविका सिद्धियाँ ।५६।

हैं साँसें यदि फूलती विकल हो, क्यों साँस लेने लगे ।
क्यों हो आकुल हाथ-पाँव अपने ढीले करे क्यों थके ।
आयेगा जब कार्य, सिद्धि-पथ में पीछे हटेगा नहीं ।
क्यों देखे श्रमविन्दुपात, श्रम को क्यों त्याग देवे श्रमी ।५७।

लेते हैं यदि दून की, मत हँसो दूना कलेजा हुए ।
पृथ्वी थी वश में, परन्तु अब तो है हाथ में व्योम भी ।
थे भूपाल तृणातितुच्छ अब हैं धाता विधाता स्वयं ।
होंगे दो मद साथ तो न दुगुना होगा मदोन्माद क्यों ।५८।

भागेगा तम-तोम त्याग पद को, लेगी तमिस्रा बिदा ।
होगी दूर कराल काल कर से दिग्व्यापिनी कालिमा ।
आयेगी फिर मंद-मंद हँसती ऊषा-समा सुन्दरी ।
होयेगा फिर सुप्रभात, वसुधा होगी प्रभा-मंडिता ।५९।

हो उत्पात, प्रवंचना प्रबल हो, होवें प्रपंची अड़े ।
होवे आपद सामने, सफलता हो संकटों में पड़ी ।
होता हो पविपात; तोप गरजें, गोले गिराती रहें ।
क्यों तो धीर बने अधीर, उसकी धी क्यों तजे धीरता ।६०।

बाँधा था जिसने पयोधि, जिसने अंभोधि को था मथा ।
पृथ्वी थी जिसने दुही, गगन में जो पक्षियों सा-उड़ी ।
पाई थी जिसने अगम्य गिरि में रत्नावली-मालिका ।
हा! धाता! वह आर्यजाति अब क्यों आपत्तियों में पड़ी ।६१।

है छाया वह जो सदैव तम में हैं रंग जाती दिखा ।
होवे दिव्य अपूर्व, किन्तु वह तो हैं कल्पना मात्र ही ।
हों लालायित क्यों विलोक उसको जो हाथ आती नहीं ।
है आपत्ति यही किसे वह मिली जो स्वप्न-सम्पत्ति है ।६२।

क्या सीचें, जब सोच हैं न सकते, है बात ही भेद की ।
ऐसी है यह ग्रंथि-युक्ति, नख के खोले नहीं जो खुली ।
है संसार विचित्र, चित्र उसके वैचित्र्य से हैं भरे ।
रोते हैं दुख को विलोक, सुख के या स्वप्न हैं देखते ।६३।

ऐसे हैं भव से अचेत, चित को है चेत होता नहीं ।
होती है कम आयु नित्य, फिर भी तो हैं नहीं चौंकते ।
देखा हैं करते विनाश, खुलती है आँख तो भी नहीं ।
क्या जानें जग लोग हैं जग रहे या हैं पड़े सो रहे ।६४।

क्यों अज्ञान-महांधकार टलता, क्यों बीत पाती तमा ।
नाना पाप-प्रवृत्ति-जात पशुता होती धरा-व्यापिनी ।
द्रष्टा वैदिक मंत्र के, रचयिता भू के सदाचार के ।
जो होते न जगे, न ज्योति जग में तो ज्ञान की जागती ।६५।

हैं उद्वेलित अब्धि पैर सकती, हैं विश्व को जीतती ।
लेती हैं गिरि को उठा, कुलिश को हैं पुष्प देती बना ।
हैं लोकोत्तर कला-कीर्त्ति-कलिता, हैं केशरी-वाहना ।
हैं तारे नभ से उतार सकती उत्साहिता शक्तियाँ ।६६।

रोकेगी तुझको स्वधर्म-दृढ़ता, धी पीट देगी तुझे ।
तेरी सत्य प्रवृत्ति पूत कर से होगी महा यातना ।
होगा गर्व सदैव खर्व शुचिता की सात्विकी वृत्ति से ।
पावेगा फल महादर्प-तरु का ऐ पातकी पाप ! तू ।६७।

होती है गतशक्ति प्राप्त प्रभुता आक्रान्त हो क्रान्ति से ।
जाती है लुट दिव्य भूति, छिनता साम्राज्य है सर्वथा ।
अत्याचार प्रकोप-वज्र बनता है वज्रियों के लिये ।
होता है स्वयमेव खर्व पल में गर्वान्ध का गर्व भी ।६८।

तानें लें, पर ऐंठ-ऐंठ करके ताने न मारा करें।
गायें गीत, परंतु गीत अपने जी के न गाने लगें।
देते हैं यदि ताल तो मचल के देवें न ताली बजा।
वे हैं जो बनते, बनें, बिगड़ के बातें बनायें नहीं।६९।

वे ही हैं हँसते न रोझ हँसना आता किसे है नहीं।
होता है कमनीय रंग उनका तो रंग हैं अन्य भी।
वे हैं कोमल, किन्तु कोमल वही माने गये हैं नहीं।
तो है भूल विलोक रूप अपना जो फूल हैं फूलते।७०।

होता जो चित में न चोर, रहती तो आँख नीची नहीं।
होता जो मन में न मैल, दृग क्यों होते नहीं सामने।
जो टेढ़ापन चित्त में न बसता, सीधे न क्यों देखते।
जो आ के पति बीच में न पड़ती, आँसू न पीते कभी।७१।

देता तो जल मैं निकाल दुखते होते नहीं हाथ जो।
तो धोता पग पूत क्यों न, लखते होते न जो दूर से।
कैसे आदर तो भला न करता है भाग्य ऐसा कहाँ।
मैं हूँ सेवक, किन्तु आज प्रभु की सेवा नहीं हो सकी।७२।

क्यों हैं लोचन लाल रात-भर क्या मैं जागता था नहीं।
होते कम्पित क्यों न हस्त पग जो है आज जाड़ा बड़ा।
मैं हूँ हाँफ रहा, परंतु घर से हूँ दौड़ता आ रहा।
है इच्छा प्रतिशोध की न मुझमें, मैं क्रोध में हूँ नहीं।७३।

काटे है कटती न रात, बकती हूँ, वेदना है बड़ी ।
आशा से पथ-ओर हैं दृग लगे, क्यों देर है हो रही ।
जाते हैं युग बने याम, व्यथिता हो हूँ व्यथा भोगती ।
दौड़ो नाथ ! बनो दयालु, दुखिता की दुर्दशा देख लो ।७४।

जी है ऊब रहा, उबार न हुआ, बाधा हुई बाधिका ।
मैं दौड़ी शत बार द्वार पर जा बांछा - विहीना बनी ।
है मेरे मुँह से न बात कढ़ती, कैसे बताऊँ व्यथा ।
आँखें भी पथरा गईं प्रिय पथी के पंथ को देखते ।७५।

थी जिनके बल से विशाल-विभवा ससार-सम्मानिता ।
दिव्यांगा दिव-देव-भाव-भरिता लोकोत्तारा पूत-धी ।
उत्कण्ठावश, हो विनम्र प्रभु से है प्रश्न मेरा यही ।
पावेंगे फिर भारतीय जन क्या ये भारती भूतियाँ ।७६।

जो थोड़े उनके हितू मिल सके, वे नाम के हैं हितू ।
या वे हैं अपवाद या कि उनमें है पालिसी पालिसी ।
पाते हैं उसको नितान्त दलिता या दुःखिता पीड़िता ।
कोई बन्धु बना न दीन जन का है दीनता दीनता ।७७।

खोया जो निज स्वर्गराज्य,दुख क्या,पाया मनोराज्य है ।
कोई हो परतन्त्र क्यों न, उनकी धी है स्वतन्त्रा बनी !
होवे संस्कृति धूल में मिल रही, वे संस्कृताधार हैं ।
देखे भारत के सलज्ज सुत को निर्लज्ज लज्जा हुई ।७८।

जाती है बन सुधासिक्त वसुधा, है व्योम पाता प्रभा ।
आती है अति दिव्यता प्रकृति में, है मोहती दिग्वधू ।
होता है रस का प्रवाह छवि में संसार-सौन्दर्य में ।
हो-हो मंजुल मन्द-मन्द उर में आनन्द-धारा बहे ।७९।

वे भू में नभ में अगम्य वन में निश्शंक हैं घूमते ।
वे उत्तालतरङ्ग वारिनिधि में हैं पोत-सा पैरते ।
वे हैं दुर्गम मार्ग में विहरते, हैं अग्नि में कूदते ।
होते हैं अभिभूत वे न भय से जो निर्भयों में पले ।८०।

जाते हैं बन भूत पेड़ तम में, है प्रेतगर्भा तमा ।
होती है बहु भीति वक्र गति से या सर्प-फुत्कार से ।
है हृत्कम्पकरी समान अवनी है मृत्यु त्रासात्मिका ।
शंका है भय भाव भूति बनती है भीरुता भूतनी ।८१।

खोले भी खुलते नहीं नयन हैं, है चेत आता नहीं ।
जो कोई हित-बात है न सुनती, है चौंकती भी नहीं ।
सारे यत्न हुए निरर्थ, जिसकी दुर्बोध हैं व्याधियाँ ।
ऐसी जाति अवश्य मृत्यु-मुख में हो मूर्छिता है पड़ी ।८२।

खोजेगी वह कौन मार्ग, उसको त्राता मिलेगा कहाँ ।
रोयेगी सिर पीट-पीट उसका उद्धार होगा नहीं ।
जीयेगी वह कौन यत्न करके पीके सुधा कौन-सी ।
जीने दे न कृतान्त-मूर्ति बनके जो जाति ही जाति को ।८३।

आँखे हैं, पर देख हैं न सकती, पा कान बे-कान है ।
होते आनन बात है न कढ़ती है साँस लेती नहीं ।
क्यों पाते चल हाथ-पाँव जब वे निर्जीव हैं हो गये ।
फूँका जीवन-मंन्त्र, किन्तु जड़ता जाती नहीं जाति की ।८४।

हो उत्तेजित भाव मध्य पथ का होता पथी ही नहीं ।
जाती है बन उक्ति ओज-भरिता तेजस्विता-पूरिता ।
होता स्पंदन है विशेष उर तो क्यों स्फीत होगा नहीं ।
है उद्वेग हुआ सदैव करता आवेग के वेग से ।८५।

होती है व्यथिता कभी विचलिता अत्यन्त भीता कभी ।
रोती है वह कभी याद करके लोकोत्तरा कीर्तियाँ ।
पुत्रों को अवलोक है विहँसती या दग्ध होती कभी ।
हो कर्तव्यविमूढ़ जाति अब तो उन्मादिनी है बनी ।८६।

होता है मन, देख जीभ चलती जो हो, उसे खींच लूँ ।
पीटूँ क्यों न उसे तुरन्त कहता है बात जो बेतुकी ।
जाता है चिढ़ चित्त चाल चलते चालाक को देख के ।
जो आँखें निकलें निकाल उनको लूँ क्यों न तत्काल मैं ।८७।

हैं संतप्त अनेक चित्त बहुशः काया महारुग्ण है ।
भू सारे उपसर्ग व्योम तक में हैं भूरिता से भरे ।
पीड़ा से सुर भी बचे न भव में है ह्रास भी मृत्यु भी ।
सारी संसृति आधि से मथित है, है व्याधि-बाधावृता ।८८।

देती हैं तन को कँपा अति व्यथा, होती अनाहूत हैं ।
हैं हा-हा ध्वनि का प्रसार करती, हो भूरि उत्तापिता ।
देता है बहु कष्ट वेग उनका उत्पात-मात्रा बढ़ा ।
अंधाधुंध मचा सदैव बनती हैं व्याधियाँ आँधियाँ ।८९।

है काँपा करती कभी तड़पती है चोट खाती कभी ।
प्रायः है वह वज्रपात सहती हो-हो महा दग्धिता ।
हो उद्वेलित अब्धि से, बदन से है फेंकती फेन भी ।
हा धाता ! किस पाप से वसुमती है भूरि उत्पीड़िता ।९०।

———

चतुर्थ आलाप

सांसारिकता

शार्दूल-विक्रीडित

व्याली-सी विष से भरी विषमता आपूरिता क्रोधना।
अन्धाधुन्ध-परायणा कुटिलता की मूर्त्ति व्याघ्रानना।
है अत्यन्त कठोर उग्र अधमा, है लोक-संहारिणी।
है दुर्दान्त नितान्त वज्र-हृदया स्वार्थान्धता-दानवी।१।

होती है मधुरा सुधा-सरसता से सिंचिता शोभना।
नाना केलि-निकेतना सुवसना शांता मनोज्ञा महा।
लीला लोल तरंगिता उदधि-सी चिन्तांकिता आकुला।
है सांसारिकता महान गहना मोहान्धता-आवृता।२।

कांक्षा है अनुरक्त भक्त जन को सद्भक्ति या मुक्ति की।
ज्ञानी को बहु ज्ञान की, विबुध को लोकोत्तरा बुद्धि की।
त्यागी को अनुभूत त्याग-सुख की, योगीन्द्र को सिद्धि की।
है सांसारिकता न स्वार्थ-रहिता, निस्स्वार्थता है कहाँ।३।

मैं हूँ ब्रह्म-समान व्याप्त सबमें, हूँ सर्वलोकेश्वरी ।
हूँ उद्भूत समस्त भूति खनि, हूँ सर्वार्थ की साधिका ।
हूँ सारी वसुधा-विभूति-जननी, हूँ शक्ति-संचारिणी ।
है सांसारिकता पुकार कहती, मैं स्वार्थसर्वस्व हूँ ।४।

होती है सुख-कामनातिप्रबला है लालसा-लोलुपा ।
प्यारे हैं भव-भोग, मुग्ध करती है भूयसी भूतियाँ ।
तो भी है वह प्रेम, प्रेम ? जिसमें है इन्द्रियासक्तता ।
तो क्या हैं हितपूर्तियाँ यदि बनीं वे स्वार्थ की मूर्तियाँ ।५।

सारे धर्म - समाज भूमितल के जो दंभसर्वस्व हैं ।
पाते हैं जिनमें महाविषमता जो द्वेष-उन्मेष हैं ।
जो हैं गौरव गर्व ईति जिनमें है वृत्ति - उन्मत्तता ।
क्यावे हैं परमार्थ - मूर्त्ति जिनमें स्वार्थान्धता है भरी ।६।

उत्फुल्ला सरसा नितान्त मधुरा शान्ता मनोज्ञा महा ।
नाना भाव-निकेतना विविधता आधारिता व्यंजिता ।
हो अम्भोधि-समान वैभवमयी हो व्योम-सी विस्तृता ।
है सांसारिकता विहार करती सर्वत्र संसार में ।७।

बातें हों मन की मिले सफलता सम्पत्ति स्वायत्त हो ।
पूरी हो प्रिय कामना, सुगमता से सिद्धियाँ प्राप्त हों ।
बाधाएँ सब काल बाधित बनें, हो वैरिता वंचिता ।
ये हैं मानव की नितान्त रुचिरा स्वाभाविकी वृत्तियाँ ।८।

क्या खाये-पहने करे स्वहित क्यों मुद्रा कमाये न जो ।
जायेगा लुट जो न बुद्धि-बल से टाले बलाएँ टलीं ।
होगा रक्षित भी न ईति अथवा दुर्नीतियों से दबे ।
संसारी फिर क्यों न जन्म जग में ले स्वार्थ-सर्वस्व हो ।९।

वे हैं धन्य परार्थ त्याग करते जो लोग हैं स्वार्थ का ।
ऐसे हैं कितने, परन्तु उनका तो त्याग ही स्वार्थ है ।
होता है परमार्थ पूत उसमें है भूरि स्वर्गीयता ।
तो भी क्या परमार्थ सार्थक नहीं जो अर्थ है स्वार्थ में ।१०।

कोई है जग में भला न, यह तो कोई कहेगा नहीं ।
संसारी फिर भी प्रमत्त रहता है स्वार्थ की सिद्धि में ।
कच्चे काम पड़े सगे बन गये, सच्चे न सच्चे रहे ।
देखा जो दृग खोल बोल सुन के तो ढोल में पोल थी ।११।

हैं ऐसे जन भी हुए जगत में जो त्याग-सर्वस्व थे ।
देवों से अति पूत दिव्य जिनकी हैं मानवी कीर्त्तियाँ ।
जाँचा तो उनकी असंख्य जन में संख्या गिनी ही मिली ।
लाखों में कुछ लोग पुण्यबल से माने महात्मा गये ।१२।

ज्ञाता वैदिक मन्त्र के प्रथमतः, धाता धरा-धर्म के ।
नाना मान्य महर्षि विज्ञ मुनि से मन्वादि से दिव्य-धी ।
मेधावी कपिलादि से विबुधता-सर्वस्व व्यासादि से ।
पृथ्वी ने कितने जने सुअन हैं उद्बुद्ध सिद्धार्थ-से ।१३।

मूसा-से जरदश्त-से अरब के नामी नबी-से सुधी ।
शिंटो धर्मधुरीण-से कुछ गिने चीनादि के सिद्ध-से ।
ऐसे ही कुछ अन्य धर्मगुरु - से धर्माग्रणी व्यक्ति से ।
हैं अत्यल्प हुए सदैव महि में ईसादि-से सद्व्रती ।१४।

है अध्यात्म महा पुनीत, तम में है तेज के पुंज-सा ।
है विज्ञान विकासमान नभ का पीयूषवर्षी शशी ।
है स्वार्थान्ध-विलोचनांजन तथा सद्भाव-अंभोधि है ।
है आधार त्रिलोक-शान्ति-सुख का सद्बोध-सर्वस्व है ।१५।

होती है जब पाप-पूरित धरा सद्वृत्ति उत्पीड़िता ।
पाती है पशुता प्रसार बनती स्वार्थान्धता है कशा ।
होता है जब नग्न नृत्य दनुजों के दानवी कृत्य का ।
आता है तब मही-मध्य बहुधा कोई महा-दिव्य-धी ।१६।

होता है वह देश-काल प्रतिभू सत्याग्रही संयमी ।
देता है बहु दिव्य ज्योति जगती के प्राणियों में जगा ।
लेता है बिगड़ी सुधार, करता उद्धार है धर्म का ।
पाती है वसुधा अलौकिक सुधा सद्बोध-सर्वस्व से ।१७।

कोई हो अवतार दिव्य जन हो या हो महा सात्विकी ।
शिक्षा हो उसकी महा हितकरी, हो उक्ति लोकोत्तरा ।
होंगे क्या तब भी सभी रुचिरधी, त्यागी, तपस्वी, यती ।
क्या होगी तब भी समस्त वसुधा हो शान्त स्वर्गोपमा ।१८।

है स्वाभाविक कामना स्वहित की, है वित्त-वांछा बली ।
प्राणी की सुख-लालसा सहज है, है चित्त स्वार्थी बड़ा ।
पंजे में इनके सदा जग रहा, कैसे भला छूटता ।
वे हैं विश्वजनीन भूति यदि ये संसार-सर्वस्व हैं ।१९।

क्या है मुक्ति ? यथार्थ ज्ञान इसका है प्राणियों को कहाँ ।
कोई मानव ही रहस्य इसका है जान पाता कभी ।
चिन्ता है किसको नहीं उदर की है जीविका जीवनी ।
प्यारी है उतनी न मुक्ति जितनी है भुक्ति भू की प्रिया ।२०।

आँखें हैं छवि-कांक्षिणी, श्रवण है लोभी सदालाप का ।
जिह्वा है रस-लोलुपा, सुरभि की है कामुका नासिका ।
सारी प्रेय विभूति को विषय को हैं इन्द्रियाँ चाहती ।
जाता है बन योग रोग, किसको है भोग भाता नहीं ।२१।

तो है कौन विचित्र बात मन में जो है भरी मत्तता ।
है आश्चर्य नहीं मनुष्य बनता जो स्वार्थ - सर्वस्व है ।
जो है जीव ममत्व से भरित तो क्या है हुआ अन्यथा ।
क्या है भौतिकता न भूत-चय की स्वाभाविकी प्रक्रिया ।२२।

होती है तम-मज्जिता मलिनता-आपूरिता ज्यों तमा ।
त्यों ही मानव की प्रवृत्ति रहती है स्वार्थ से आवृता ।
जैसे तारक से मयंक-कर से पाती निशा है प्रभा ।
त्यों ही है वर बोध से नृमति भी है दिव्य होती कभी ।२३।

आचार्यों महिमा-महान पुरुषों से प्राप्त सद्वृत्तियाँ ।
होती हैं उपकारिका हितकरी सद्बोध-उत्पादिका ।
वे हैं आकर यथाकाल करते उद्बुद्ध संसार को ।
तो भी स्वार्थ-प्रवृत्ति-वृत्ति जनता है त्याग पाती नहीं ।२४।

है आवश्यक वस्तु व्यस्त रखती देती व्यथा है क्षुधा ।
बाधा है सब काल व्याधि बनती है वैरिता बेधती ।
है दोनों कर बाँधती विवशता है व्यर्थता बाँट में ।
प्राणी स्वार्थनिबद्ध दृष्टि सुपथों में विस्तृता क्यों बने ।२५।

ऐसे हैं महि में मिले सुजन भी जो त्याग की मूर्त्ति थे ।
लोगों का हित था निजस्व जिनका जो थे परार्थी बड़े ।
ये लोकोत्तर धर्मप्राण जन ही भू दिव्य आदर्श हैं ।
होते हैं अपवाद, लोक कितने ऐसे मिले लोक में ।२६।

औरों का मुँह-कौर छीन, भरते हैं पेट भूखे हुए ।
लोगों की विविधा विभूति हरते हैं, भीति होती नहीं ।
होते हैं बहु लोग तृप्त बहुधा पीके सगों का लहू ।
होवे क्यों न अधर्म, स्वार्थ इतना है धर्म प्यारा किसे ।२७।

माता हैं महि देवता, पर हुए भीता कलंकांक से ।
हाथों से अपने अबोध सुत का है घोंट देती गला ।
जो थे देव-समान, संकट पड़े, वे दानवों-से बने ।
कोई हो उपलब्ध आत्महित को है त्याग पाता नहीं ।२८।

वेदों की भव-वन्दनीय श्रुति को शास्त्रादि के मर्म को ।
सन्तों की शुचि उक्ति को जगत के सद्धर्म के मन्त्र को ।
जाती है तब भूल भक्ति-पथ सो विज्ञान की वृत्ति को ।
होती है जब मत्त आत्मरति की वांछा बलीयान हो ।२९।

कानों ने कलिकाल के कब सुनी ऐसी महागर्जना ।
हो पाई कब यों कठोर रव से शब्दायमाना दिशा ।
हो पाया किस देश मध्य चतना कोलाहलों को बढ़ा ।
होता है अब वज्रघोष जितना भू में अहंभाव का ।३०।

सारे भूतल में समुद्र-जल में युद्धाग्नि-ज्वाला जगा ।
ओले से नभ-यान से दव-भरे गोले गिरा प्रायशः ।
नाना दानवता - प्रपञ्च-वलिता दुर्वृत्तियों को बढ़ा ।
है भूलोक-विलोप-साधन-व्रती लिप्सा अहंभाव की ।३१।

नाना नूतन अस्त्र-शस्त्र तुपकें गोले बड़े विप्लवी ।
हैं संहारक कोटि-कोटि जन के कल्पान्त के अर्क-से ।
होते हैं उनसे विनष्ट नगरों के वृन्द तत्काल ही ।
है विज्ञान-विभूति आज वसुधा-उद्भूति-विध्वंसिनी ।३२।

छाये हैं बहु व्योमयान नभ में जो काल - से क्रूर हैं ।
हो-हो हुंकृत ओत-प्रोत निधि हैं संग्राम के पोत से ।
पृथ्वी में उन्मादपूर्ण बजती है द्वंद्व की दुन्दुभी ।
प्रायः है अब भ्रान्ति क्रांति बनती, भूशान्ति भागे कहाँ ।३३।

अत्याचार-रता कठोर-हृदया है रक्तपानोत्सुका ।
है संहार-परायणा पवि-समा मांसाशिनी पापिनी ।
नाना मानव-वंश-ध्वंस-निरता निन्द्या कृतान्तोपमा ।
है कृत्या सम कूटनीति-कटुता-आपूरिता मेदिनी ।३४।

है पाथोधि विभूति दान करता स्वायत्त है सिंधुजा ।
पृथ्वी है वशवर्त्तिनी अनुगता है दामिनी शासिता ।
पंखा है झलता समीर, उसको देता सुधा है शशी ।
फूला है बन भाव-मत्त, भव को, भूला अहंभाव है ।३५।

होवे जो हित पाप से वह उसे तो पुण्य है मानता ।
अत्याचार किये मिले यदि धरा तो क्या सदाचार है ।
जो हो लाभ किये कुवृत्ति तब क्यों सद्वृत्ति सद्वृत्ति है ।
है सांसारिकता न ईश्वर-रता, है स्वार्थसिद्धिप्रदा ।३६।

ज्ञाता होकर विश्वव्याप्त विभु के जो हैं बने पातकी ।
आँखें जो नर की बचा प्रभु-दृगों में धूल हैं झोंकते ।
जो हो आस्तिक मूर्त्तिमान बनते हैं नास्तिकों के चचा ।
वे हैं ईश्वर मानते, मन भला क्यों मान लेगा इसे ।३७।

होती है कब भीति लोकपति की काटे करोड़ों गले ।
आता है कब ध्यान पूत प्रभु का संसार को पीसते ।
काँपा कौन नृशंस सर्वगत के सर्वाश्रितों को सता ।
हारी ईश्वरसिद्धि कर्मपथ में आस्वार्थ की सिद्धि से ।३८।

हृद्या ईश्वरता हुई न इतनी हो मुक्ति से मंडिता ।
पा के दिव्य मनोज्ञ मूर्त्ति जितनी भाई अहंमन्यता ।
प्यारी हैं उतनी कभी न लगती आध्यात्मिकी वृत्तियाँ ।
भाती है जितनी विभूति-रत को भू भौतिकी प्रक्रिया ।३९।

प्राणी है अनुरक्त भक्त जितना संसार-सम्पत्ति का ।
प्यारी है उतनी उसे न तपसा-सम्बन्धिनी साधना ।
भोगेच्छा जितनी रुची, प्रिय लगी वांछा सुखों की यथा ।
वैसी ही कब त्यागवृत्ति नर को आकांक्षिता हो सकी ।४०।

होता है पर-कार्य पूत, जनता का श्रेय सत्कर्म है ।
तो भी त्राण-निमित्त आत्महित का उद्बोध ही मुख्य है ।
होवे मुक्ति महा विभूति, फिर भी है भुक्ति ही जीवनी ।
सच्चा हो पर लोक, किन्तु मिलता आलोक है लोक में ।४१।

होता देख महा अनर्थ बनता कोई परार्थी नहीं ।
होते भी अपकार कौन करता सत्कार है अन्य का ।
मर्यादा प्रिय है किसे न, किसको है नाम प्यारा नहीं ।
सत्ता है किसकी न भूति, किसको भाती महत्ता नहीं ।४२।

बाधा की हरती अबाध गति है धी धीरता से भरी ।
वैरी के बल को विलोप करती हैं वीरता-वृत्तियाँ ।
देती है कर छिन्न-भिन्न उसको सत्ता महत्ता दिखा ।
दुष्टों की पशुता-प्रवृत्ति सहती है शक्तिमत्ता नहीं ।४३।

जोड़े क्यों हित क्रुद्ध क्रूर नर से पा प्रार्थिता शक्तियाँ ।
मोड़े क्यों मुख, रुष्ट दुष्ट जन को कोड़े लगाये न क्यों ।
छोड़े क्यों छल-छद्म खल को दे क्यों न धुर्रे उड़ा ।
तोड़े क्यों न कृतान्त-तुल्य वन के दुर्दान्त के दन्त को ।४४।

जैसी है त्रिगुणात्मिका त्रिगुण से है वैसी ही शासिता ।
धू-धू है जलती प्रफुल्ल बनती होती सुधासिक्त है ।
है दिव्या मधुरा महान सरसा स्वार्थान्धता से भरी ।
है सांसारिकता रहस्य-भरिता वैचित्र से आवृता ।४५।

———

हृद्या ईश्वरता हुई न इतनी हो मुक्ति से मंडिता ।
पा के दिव्य मनोज्ञ मूर्त्ति जितनी भाई अहंमन्यता ।
प्यारी हैं उतनी कभी न लगती आध्यात्मिकी वृत्तियाँ ।
भाती है जितनी विभूति-रत को भू भौतिकी प्रक्रिया ।३९।

प्राणी है अनुरक्त भक्त जितना संसार-सम्पत्ति का ।
प्यारी है उतनी उसे न तपसा-सम्बन्धिनी साधना ।
भोगेच्छा जितनी रुची, प्रिय लगी वांछा सुखों की यथा ।
वैसी ही कब त्यागवृत्ति नर को आकांक्षिता हो सकी ।४०।

होता है पर-कार्य पूत, जनता का श्रेय सत्कर्म है ।
तो भी त्राण-निमित्त आत्महित का उद्बोध ही मुख्य है ।
होवे मुक्ति महा विभूति, फिर भी है भुक्ति ही जीवनी ।
सच्चा हो पर लोक, किन्तु मिलता आलोक है लोक में ।४१।

होता देख महा अनर्थ बनता कोई परार्थी नहीं ।
होते भी अपकार कौन करता सत्कार है अन्य का ।
मर्यादा प्रिय है किसे न, किसको है नाम प्यारा नहीं ।
सत्ता है किसकी न भूति, किसको भाती महत्ता नहीं ।४२।

बाधा की हरती अबाध गति है धी धीरता से भरी ।
वैरी के बल को विलोप करती हैं वीरता-वृत्तियाँ ।
देती है कर छिन्न-भिन्न उसको सत्ता महत्ता दिखा ।
दुष्टों की पशुता-प्रवृत्ति सहती है शक्तिमत्ता नहीं ।४३।

जोड़े क्यों हित क्रुद्ध क्रूर नर से पा प्रार्थिता शक्तियाँ ।
मोड़े क्यों मुख, रुष्ट दुष्ट जन को कोड़े लगाये न क्यों ।
छोड़े क्यों छल-छद्म खल को दे क्यों न धुर्रे उड़ा ।
तोड़े क्यों न कृतान्त-तुल्य वन के दुर्दान्त के दन्त को ।४४।

जैसी है त्रिगुणात्मिका त्रिगुण से है वैसी ही शासिता ।
धू-धू है जलतीं प्रफुल्ल बनती होती सुधासिक्त है ।
है दिव्या मधुरा महान सरसा स्वार्थान्धता से भरी ।
है सांसारिकता रहस्य-भरिता वैचित्र से आवृता ।४५।

———

पंचम आलाप

स्वर्ग और नरक

शार्दूल-विक्रीडित

है ऐरावत-सा गजेन्द्र न कहीं, है कौन देवेन्द्र-सा ।
है कान्ता न शची समान अपरा देवापगा है कहाँ ।
श्री जैसी गिरिजा गिरा सम नहीं देखी कहीं देवियाँ ।
पाई कल्पलतोपमा न लतिका, है स्वर्ग ही स्वर्ग-सा ।१।

शोभा-संकलिता नितान्त ललिता कान्ता कलालंकृता ।
लीला-लोल सदैव यौवनवती सद्वेश-वस्त्रावृता ।
नाना गौरव-गर्विता गुणमयी उल्लासिता संस्कृता ।
होती है दिव-दिव्यता-विलसिता स्वर्गाङ्गना सुन्दरी ।२।

शुद्धा सिद्धि-विधायिनी अमरता आधारिता निर्जरा ।
सारी आधि-उपाधि-व्याधि-रहिता बाधादि से वर्जिता ।
कान्ता कान्ति-निकेतनातिसरसा दिव्या सुधासिंचिता ।
नाना भूति विभूति मूर्त्ति महती है स्वर्ग स्वर्गीयता ।३।

जो होती न विराजमान उसमें दिव्यांग देवांगना ।
जो देते न उसे प्रभूत विभुता देवेश या देवते ।
नाना दिव्य गुणावली-सदन जो होती नहीं स्वर्गभू ।
तो पाती न महान भूति महती होती महत्ता नहीं ।४।

होते म्लान नहीं प्रसून, रहते उत्फुल्ल हैं सर्वदा ।
पा के दिव्य हरीतिमा विलसती है कान्त वृक्षावली ।
पत्ते हैं परिणाम रम्य फल हैं होते सुधा से भरे ।
है उद्यान न अन्य, स्वर्ग-अवनी के नन्दनोद्यान-सा ।५।

जो हो स्वस्थ शरीर, भाग्य जगता, पद्मासना की कृपा ।
जो हो पुत्र विनीत, बुद्धि विमला, हो बंधु में बंधुता ।
जो हो मानवता विवेक-सफला, हों सात्विकी वृत्तियाँ ।
हो कान्ता मृदुभाषिणी अनुगता तो स्वर्ग है सद्म ही ।६।

होती है विकरालता जगत की जाते जहाँ कम्पिता ।
आता काल नहीं समीप जिसके आरक्त आँखें किये ।
होता है भय आप भीत जिसकी निर्भीकता भूति से ।
जा पाते यमदूत हैं न जिसमें है स्वर्ग-सा स्वर्ग ही ।७।

होता क्रन्दन है नहीं, न मिलता है आर्त्त कोई कहीं ।
हाहाकार हुआ कभी न, उसने आहें सुनी भी नहीं ।
देखा दृश्य न मृत्यु का, न दव से दग्धा विलोकी चिता ।
है आनन्द-निधान स्वर्ग-विभुता उत्फुल्लिता-मूर्त्ति है ।८।

गाती है वह गीत, पूत जिससे होती मनोवृत्ति है।
लेती है वह तान रीझ जिससे है रीझ जाती स्वयं।
ऐसी है कलकंठता कलित जो है मोहती विश्व को।
है संगीत सजीव मूर्त्ति दिवि की लोकोत्तरा अप्सरा।९।

सारी मोहन-मंत्र-सिद्धि स्वर में, आलाप में मुग्धता।
तालों में लय में महामधुरता, शब्दावली में सुधा।
भावों में वर भावना सरसता उत्कंठा कंठ में।
देती है भर भूतप्रीतिध्वनि में गंधर्व गंधर्वता।१०।

जागे सात्विक भाव भूति टलती हैं तामसी वृत्तियाँ।
देखे दिव्य दिवा-विकास छिपती है भीतभूता तमा।
जाती है मिट ज्ञान भानु-कर से अज्ञान की कालिमा।
पाते हैं द्युति लोक लोक दिवि की आलोकमाला मिले।११।

पाते हैं बहुदीप्ति देवगण से दिव्यांगना-वृन्द से।
होते झंकृत हैं सदैव बजते वीणादि झंकार से।
हो आरंजित रत्न से विलसते हैं मोहते लोक को।
आँखों में बसते सदा विहँसते आवास हैं स्वर्ग के।१२।

हो-हो नृत्य-कला-निमग्न दिखला अत्यन्त तल्लीनता।
पाँवों के वर नूपुरादि ध्वनि से संसार को मोहती।
ले-ले तान महान मंजु रव से धारा सुधा की बहा।
नाना भाव-भरी परी सहित गा है नाचती किन्नरी।१३।

नाना रोग-वियोग-दुःख-दल से जो द्वंद्व से है बचा ।
सारी ऋद्धि प्रसिद्ध सिद्धि निधि पा जो भूति से है भरा ।
जो है मृत्यु-प्रपंच-हीन जिसमें हैं जीवनी ज्योतियाँ ।
तो क्या है अपवर्ग-पुण्य बल से जो स्वर्ग ऐसा मिले ।१४।

सारी संसृति है विभूति उसकी, है भूत-सत्ता वही ।
प्यारा है वह लोक लोकपति का है लोक प्यारा उसे ।
जो हो जाय अनन्यता जगत में तो अन्यता है कहाँ ।
तो क्या है अपवर्ग-प्राप्ति-गरिमा, तो स्वर्ग संसर्ग क्या ।१५।

जो माने न उसे असार, समझे संसार की सारता ।
जो देखे तृण से त्रिदेव तक में दिव्यांग की दिव्यता ।
जो आँखें अवलोक लें अखिल में आत्मीयता का समा !
जो मानव का हो महान मन तो क्या साहिबी स्वर्ग की ।१६।

क्या है कर्म अकर्म धर्म किसको हैं मानते दिव्य-धी ।
क्या है पुण्य-विवेक, पाप किसको विद्वज्जनों ने कहा ।
मीमांसा इसकी हुई कम नहीं, है आज भी हो रही ।
होता है न रहस्य-भेद फिर भी 'धर्मस्य सूक्ष्मा गति :' ।१७।

नाना तर्क-वितर्क है विषय हैं वे जो द्विधाग्रस्त हैं ।
ऐसे हैं फिर भी विचार कितने जो सत्य-सर्वस्व हैं ।
सारे मानवधर्मग्रंथ जिनको हैं तत्त्वतः मानते ।
तो भी क्या वसुधा समस्त जन के वे सर्वथा मान्य हैं ।१८।

प्राणी है परिणाम भूत-चय का, है वृत्ति भी भौतिकी ।
पाते हैं उसमें अतः अधिकता भूतोद्भावा भूति की ।
होती है पशुता-प्रवृत्ति प्रबला कर्मेन्द्रियासक्ति से ।
देती है उसको बना अधमता की मूर्त्ति स्वार्थान्धता ।१९।

हो सावेश नहीं मनुष्य करता है कौन-सी क्रूरता ।
हो क्रोधान्ध महा अनर्थ करते होता नहीं त्रस्त है ।
क्या है बर्बरता महा अधमता क्या दानवी कृत्य है ।
प्राणी है यह सोच ही न सकता विक्षिप्त हो वैर से ।२०।

चेष्टाएँ कितनी हुईं, तम टले, पापांधता दूर हो ।
अत्याचार निरस्त हो, दनुजता हो वज्रपातांकिता ।
तो भी क्या पशुता टली,अधमता क्या हो सकी ध्वंसिता ।
क्या धी त्रस्त हुई सुने नरक की हृत्कम्पकारी कथा ।२१।

तो क्या है यमयातनातिपरुषा क्या है महा भर्त्सना ।
तो क्या है विकरालमूर्त्ति यम के उद्दंड दूताग्रणी ।
जो हो शंकित अल्प भी न उनसे पापीयसी वृत्ति तो ।
क्या है वैतरणी विभीषण क्रिया क्या नारकीयाग्नि है ।२२।

जो होते कुछ भी सशंक, मति तो होती नहीं तामसी ।
हो पाती तमसावृता न दृग की ज्योतिर्मयी दृष्टि भी ।
तो व्यापी रहती नहीं हृदय में दुर्वृत्ति की कालिमा ।
हैं जो लोग मदांध वे न डरते हैं अंधतामिस्र से ।२३।

पाई है उसने प्रभूत पशुता दुर्वृत्तता दानवी ।
हिंसा हिंसक जन्तु-सी कुटिलता सर्पाधिराजोपमा ।
उत्पात - प्रियता प्रभंजन समा दुर्दग्धता वह्नि-सी ।
कुंभीपाक विपाक बात सुन क्यों काँपे महापातकी ।२४।

देता है अलि - डंक-सा दुख उसे जो पंक-निक्षेप हो ।
होती है अहि-दंशतुल्य परुषा पीड़ा अवज्ञा हुए ।
देखे कीर्त्ति - कलाप - लोप उसको होता महाताप है ।
पाता रौरव-वास दीर्घ दुख है खो गौरवों को सुधी ।२५।

होते हैं उसके विचार-तरु के पत्ते छुरा-धार से ।
देते हैं कर जो विपन्न बहुधा रक्ताक्त उद्बोध को ।
जो होके विकलांग भाव उसके होते व्यथाग्रस्त हैं ।
तो क्या है असिपत्र-से नरक का वासी नहीं भ्रष्ट-धी ।२६।

है दुर्गन्ध - निकेतना कलुषिता निन्द्या जुगुप्सा-भरी ।
हैं उन्मादमयी सनी रुधिर से हैं लोक-हिंसारता ।
होती है खर गृध्रदृष्टि उनकी मांसाशिनी निम्नगा ।
भू में ही कितनी कराल कृतियाँ हैं कालसूत्रोपमा ।२७।

जोंकें हों उसमें प्रकम्पित भरी दुर्दशनों से भरी ।
होंवे भूरि विषाक्त व्याल उसके फूत्कार से फूँकते ।
हो कालानन-सा कराल वह या हो आस्य नागेन्द्र का ।
थोड़ी भी कब अंधकूप परवा पापांधता को हुई ।२८।

लोहे से विरची विभावसु बनी आलिङ्गिता कामिनी ।
दे अत्यंत व्यथा, नुचें नरक में सर्वाङ्ग की बोटियाँ ।
सारे सुन्दर गात में कुलिश - से काँटे सहस्रों गड़ें ।
क्यों कामी सुन वज्रकंटक-कथा कामांधता से बचे ।२९।

जो खाते पर-मांस हैं न उनका क्यों मांस खाते वही ।
जैसा है नर पाप - कर्म, मिलता है दण्ड वैसा वहाँ ।
चाहे हो अथवा न हो नरक, क्या आदर्श भी है नहीं ।
तो है शोक, विलोक शाल्मलिक्रिया जो हो न शालीनता ।३०।

देखा जो दृग खोल के अवनि तो है वंचितों से भरी ।
हैं रोते मिलते अनेक कितने पाते नहीं रोटियाँ ।
लाखों को भर पेट अन्न मिलना है स्वप्न के दृश्य-सा ।
लाखों की कृमि-भोजनादि नरकों-सी नारकी वृत्ति है ।३१।

हो-हो लोलुपता-प्रपंच-पतिता हो लोभ से लालिता ।
ला, ला, के पड़ फेर में, ललकती, हो लालसा से भरी ।
पाती हैं प्रति यातना निरय की हो लीन दुर्नीति में ।
लालाभक्षनिकेतना अललिता लालायिता वृत्तियाँ ।३२।

चक्की में पिसते नहीं विवश हो, होते व्यथाग्रस्त क्यों ।
कैसे शूकर से कदर्य्य, मुख बा - बा लीलना चाहते ।
जो होते न कुकर्म में निरत तो जाता न रेता गला ।
कैसे शूकर-आननादि नरकों-सी यंत्रणा भोगते ।३३।

देखे दुर्गति पाप में निरत की, कांमाध की दुर्दशा ।
नाना शूल-समूह से हृदय को पाके बिधा प्रायशः ।
बारंबार विलोक मत्त मति को मोहादि से मर्दिता ।
होती हैं सुख ज्ञात संडसन की सारी सुनी साँसतें ।३४।

होती है सुखिता पिये रुधिर के, है नोचती बोटियाँ ।
प्यारा है उसको निपात वह है उत्पात - उत्पादिका ।
लेती है प्रिय प्राण प्राणिचय का, है त्राण देती कहाँ ।
क्रूरों की कटुतामयी कुटिलता है गृध्रभक्षोपमा ।३५।

पक्षी को पशुवृन्द को पटक के हैं पीटती प्रायशः ।
बाणों से कर विद्ध गृध्र बन हैं देती बड़ी यंत्रणा ।
हैं कोंचा करती सदैव, बढ़के हैं गोलियाँ मारती ।
हैं विश्वासन-सी निकृष्ट, नर की मांसाशिनी वृत्तियाँ ।३६।

जो होवें बहु गृध्र क्षीण खग को चोंचें चला चोंथते ।
जो हों निर्बल को विदीर्ण करते हो क्रुद्ध क्रूराग्रणी ।
जो निर्जीव शरीर का लिपट हों कुत्ते कई नोचते ।
तो श्वानोदन-दृश्य दृष्टिगत क्यों होगा न भू में किसे ।३७।

क्या हैं प्राणिसमूह को न डसते नानामुखी सर्प हो ।
होती है उनकी कशा कलुषिता क्या विज्जुतुल्या नहीं ।
क्या वे ले शित शेल हैं न कितने हृत्पिंड को बेधते ।
शूल-प्रोत-समान क्या न महि में हैं शूलदाताग्रणी ।३८।

हैं दुर्गंधमया महाकलुषिता वीभत्सता से भरी ।
नाना मूर्त्तिमती करालवदना क्रोधान्विता सर्पिणी ।
है उच्छृंखलता-रता बहुमुखी आतंक-आपूरिता ।
पापी की पतिता प्रवृत्ति-सदृशा वैश्वासिनी प्रक्रिया ।३९।

है डाला करती विपन्न मुख में सीसा गला प्रायशः ।
भोगे भी यह भोग प्राण कढ़ते हैं पातकी के नहीं ।
खाता मुद्गर है, प्रहार सहता, है छूटता जी नहीं ।
कैसी है यह क्षार कर्दमकृता दुःखान्त दृश्यावली ।४०।

रोता है पिटके कठोर कर से है यंत्रणा भोगता ।
बोटी है कटती, समस्त तन को है नोचती दानवी ।
है दुर्भाग्य, महा विपत्ति यह है, है मर्मवेधी व्यथा ।
जो रक्षोगण-भोजनावधि अघी है छूट पाता नहीं ।४१।

———

षष्ठ आलाप

प्रलय प्रपंच

शार्दूल विक्रीडित

है पाताल-पता कहाँ, गगन भी है सर्वथा शून्य ही ।
भू है लोक अवश्य, किन्तु वह क्या है एक तारा नहीं ।
संख्यातीत समस्त तारक-धरा के तुल्य ही लोक हैं ।
लोकों की गणना भला कब हुई, होगी कभी भी नहीं ।१।

क्या की है, यह सोचके, विबुध ने लोकत्रयी-कल्पना ।
जो हैं ज्ञापित नाम से वसुमती, आकाश, पाताल के ।
तारे हैं नभ में अतः गगन ही संकेत है सर्व का ।
जो हो, किन्तु रहस्य लोकचय का अद्यापि अज्ञात है ।२।

तारों में कितने सहस्रकर से भी सौगुने हैं बड़े ।
ऐसे हैं कुछ सूर्य ज्योति जिनकी भू में न आई अभी ।
होता है यह प्रश्न, क्या प्रलय में हैं ध्वंस होते सभी ।
है वैज्ञानिक धारणा कि इसकी संभावना है नहीं ।३।

ज्यों भू में बहु जीव नित्य मरते होते समुत्पन्न हैं ।
वैसे ही नभ-मध्य नित्य बनते हैं छीजते लोक भी ।
है स्वाभाविक प्रक्रिया यदि यही, तत्काल ही साथ ही ।
सारे तारक-व्यूह का विलय तो क्यों मान लेगा सुधी ।४।

शंकाएँ इस भाँति की बहु हुईं, हैं आज भी हो रही ।
है सिद्धान्त-विभेद भी कम नहीं, है तर्क-सीमा नहीं ।
तो भी है यह बात सत्य, पहले जो विश्व सूक्ष्माणु था ।
सो कालान्तर में पुनः यदि बने सूक्ष्माणु वैचित्र्य क्या ।५।

वेदों से यह बात ज्ञात विबुधों के वृन्द को है हुई ।
जो है सक्रिय भाग सर्व भव का सो तो चतुर्थांश है ।
है शेषांश क्रिया-विहीन, अब भी, जो सर्वथा रिक्त है ।
कैसी अद्भुत गूढ़ उक्ति यह है, सत्ता महत्तांकिता ।६।

जो है निष्क्रिय तीन अंश कृतियाँ जो हैं चतुर्थांश में ।
पायेगा भव पूर्णता कब ? इसे क्यों धा सकेगी बता ।
होवेगा कब नाश सर्व भव का ? कोई इसे क्यों कहे ।
ये बातें मन-बुद्धि-गोचर नहीं, प्रायः अविज्ञेय हैं ।७।

शास्त्रों में विधि-कल्प के प्रलय के कालादि की कल्पना ।
है गंभीर विचार-भाव-भरिता विद्वज्जनोद्बोधिनी ।
तो भी वे कह नेति-नेति वसुधा को हैं बताते यही ।
है संसार रहस्य, है प्रकृति की मायातिमायाविनी ।८।

जो पूरे परमाणु-वाद-रत हैं, विज्ञान-सर्वस्व हैं।
वे भी देख विचित्रता प्रकृति की होते जडीभूत हैं।
क्यों कोई खग विश्वव्याप्त नभ की देगा इयत्ता बता।
कोई कीट वसुंधरा-विभव का क्यों पा सकेगा पता।९।

आविष्कारक कर्मशील बहुशः हैं मेदिनी में हुए।
इच्छा के अनुकूल कूल पर जा हैं शोध भूयः किये।
पाये हैं उनके प्रयत्न-कर ने प्रायः कई रत्न भी।
संसारांबुधिरत्नराशि फिर भी दुष्प्राप्य दुर्बोध है।१०।

आके भूतल में विलोक निशि में आकाश-दृश्यावली।
होता है मनुजात बुद्धिहत-सा सोचे स्वअल्पज्ञता।
पाये हैं कुछ बुद्धिमान जन ने एकाध मोती कहीं।
बेजाने संसार-सिंधु अब भी छाने बिना है पड़ा।११।

वे थे शक्ति-निधान साथ उनका था दानवों ने दिया।
क्या है मानव-शक्ति, और उसकी क्या है क्रियाशीलता।
मेधावी सुर ने समुद्र मथ के जो रत्न पाये गिने।
तो क्यों रत्न-समूह विश्व-निधि के पाते धरा स्वल्पधी।१२।

थोड़ा ज्ञान हुए, महान बनना, सीधे नहीं बोलना।
मान्यों का करना न मान, सुनना बातें न धीमान की।
बोना बीज प्रपंच का सदन में, बातें बनाना वृथा।
लेना काम न बुद्धि से खल मिले, है बुद्धिमत्ता नहीं।१३।

देखे दुर्गति देश की, विवशता उत्पीड़िता जाति की।
देखे क्रन्दन क्षुधादग्ध जन का, संताप संत्रस्त का।
देखे ध्वंस प्रशंसनीय कुल का, निर्वंश सद्वंश का।
जाते हैं जल क्यों नहीं, सजल हो पाते नहीं नेत्र जो।१४।

तो है व्यर्थ अपूर्व वाक्य रचना ओजस्विनी वक्तृता।
तो है व्यर्थ गभीर गर्जन, बुरी है दीर्घ आयोजना।
तो है व्यर्थ समस्त व्यंग, गहरी आलोचना लोक की।
सेवा हो सकती अनन्य मन से जो मातृ-भू की नहीं।१५।

है लक्षाधिप की कमी न, फिर भी कंगाल हैं कोटिशः।
होते हैं व्यय व्यर्थ; किन्तु बहुशः हैं पीच पाते नहीं।
होती है बहु दुर्दशा, पर खड़े होते नहीं रोंगटे।
देती है व्यथिता बना न मति को क्यों भारती-भू-व्यथा।१६।

भीता है वह सत्प्रवृत्ति जिससे भू को मिली भव्यता।
त्यक्ता है वह शान्ति जो जगत में है क्रान्ति-विध्वंसिनी।
देखे दुर्गति नीति की मनुजता अत्यन्त है चिन्तिता।
यों हो मर्दित भारतीय सुत से क्यों भारती-भूतियाँ।१७।

होवे पावनतारता सुचरिता सद्वृत्ति से पूरिता।
कान्ता कीर्त्ति-कलाप से विलसिता लोकोपकारांकिता।
पा सत्यामृत का प्रवाह सरसा होती रहे सर्वदा।
सद्भावाचल-शृंग से निपतिता हो भारती-भू नहीं।१८।

पाके श्री सुत सर्वदा सुखित हों होवें यशस्वी सुधी ।
ऐसी उत्तम नीति हो, बन सके जो प्रीति-संवर्द्धिनी ।
होवे मानवता-प्रवृत्ति प्रबला हो लालसा उज्ज्वला ।
होवे भारत-भू भला, उतरती दीखे सदा आरती ।१९।

वेदों से भववंद्य ग्रंथ किसकी सद्वृद्धि के स्वत्व हैं ।
पैदा हैं किसने किये सुअन वे जो सत्यसर्वस्व हैं ।
ऊँचा है कहता हिमाद्रि किसको सर्वोच्चता को दिखा ।
पाके भारत-सा सपूत भव में है भाग्यमाना मही ।२०।

हो पाये अवतार भार हरने की दृष्टि से ही जहाँ ।
भाराक्रान्त जिसे विलोक विधि भी होते महाभीत थे ।
तो होगा बहुदग्ध क्यों न उर, क्यों होगी न पीड़ा बड़ी ।
जो भारत के भारभूत नर से हो भारभूता धरा ।२१।

क्यों होगा उसका उभार उसमें होगी न क्यों भीरुता ।
होते भी सुविभूतियाँ न वह क्यों होगी व्यथा से भरी ।
दैवी भूति-निकेत दिव्यसुर-से प्राणी कहाँ हैं हुए ।
भीता भारत-जात भार-भय से क्यों भारती-भूमि हो ।२२।

है औदार्यमयी समस्त भव के सद्भाव से है भरी ।
होती है मुदिता विलोक जगती लीलावती मूर्त्तियाँ ।
सारी मोहक मंजु सृष्टि-ममता है मोह लेती उसे ।
संसिक्ता रस से महानहृदया है विश्व की बंधुता ।२३।

तो हत्या करती कभी न इतनी पापीयसी वृत्तियाँ ।
हो पाईं जितनी जिन्हें सुन किसे होती नहीं है व्यथा ।
तो धर्मान्ध नहीं कृतान्त बनते कृत्या कहाती न धी ।
प्राणी निष्ठुर चित्तमध्य बसती जो विश्व की बंधुता ।२४।

वे दानव हैं जो अधर्म करते हैं धर्म की ओट में ।
वे हैं पामर ढूँढ़ते गरल हैं जो पुण्य-पाथोधि में ।
वे सद्ग्रंथ कदापि हैं न जिसमें हैं ईदृशी पंक्तियाँ ।
जो हैं धर्म-विहीन, विश्व-ममता के मर्म से वंचिता ।२५।

देते हैं प्रिय ज्योति मंद हँसके हैं मोह लेते उसे ।
हैं तारे-सम नेत्र के. वसुमती के 'इन्दु' आनन्द हैं ।
वे आके रस जो नहीं बरसते, होती रसा क्यों रसा ।
तो होती वसुधा न सिक्त, कर में होती सुधा जो नहीं ।२६।

तो होता तम-भरा सर्व महि में होती न दृश्यावली ।
तो होती मलिना दिशा न मिलती छाई कहीं भी छटा ।
हो जाती मरु-मेदनी, नयनता पाती महाअंधता ।
देते जो न दिनेश दिव्य बनके भू-भूति को दिव्यता ।२७।

———

सप्तम आलाप

सत् चित् आनन्द

शार्दूल-विक्रीडित

जो हो सात्विकता भरी न उसमें, जो हो नहीं दिव्यता ।
जो हो बोधक नहीं पूत रुचि का,जो हो नहीं शुद्ध श्री ।
तो है व्यर्थ, प्रवंचना - भरित है, है धूर्त्तता चिह्न ही ।
होवे भाल विशाल का तिलक जो सत्यावलम्बी नहीं ।१।

तो क्या है वह लालिमा तिलक की जो भक्तिरक्ता नहीं ।
तो क्या है वह श्वेतता न जिसमें है सात्विकी सिक्तता ।
रेखाएँ रमणीय, कान्त रचना, आकार की मंजुता ।
तो क्या है उनमें नहीं यदि लसी सत्याहता पूतता ।२।

नाना योग-क्रिया-कलाप-विधि से आराधना इष्ट की ।
पूजा - पाठ - व्रतोपवास-जप की यज्ञादि की योजना ।
देवोपासन मन्दिरादि रचना पुण्यांग की पूर्त्तियाँ ।
तो क्या हैं यदि साधना-नियत में है सत्य-सत्ता नहीं ।३।

होती हैं सब सिद्धियाँ करगता अंगीकृता ऋद्धियाँ ।
जाती है बन सेविका सफलता सद्वृत्ति - उद्बोधिता ।
है आज्ञा मतिमानता मनुजता ओजस्विता मानती ।
होगी क्यों ऋत कल्पना न उसकी जो सत्य-सकल्प है ।४।

जो है ज्ञान-निधान कष्ट उसको देगी न अज्ञानता ।
जो है लोभ - विहीन तृप्त उसको लेगी न लिप्सा लुभा ।
मोहेगी न विमुक्त मुक्तिरत को मुक्तावली - मालिका ।
होवेगा वह क्यों असत्य प्रतिभू जो सत्य-सर्वस्व है ।५।

जो माला फिरती रहे प्रति घटी होगा न तो भी भला ।
जो संध्या करते त्रिकाल हम हों तो भी नपेगा गला ।
जो हों योग - क्रिया सदैव करते तो भी न होंगे सुखी ।
होती है यदि अज्ञता विमुखता से सत्यता वंचिता ।६।

अन्यों के छिनते न स्वत्व लुटते तो कोटिशः सद्म क्यों ।
क्यों होते नगरादि ध्वंस बहती क्यों रक्त-धारा कहीं ।
कैसे तो कटते कराल कर से लाखों करोड़ों गले ।
पृथ्वी हो रत सर्व-भूत-हित में जो सत्य को पूजती ।७।

क्यों होते बहु वंश ध्वंस मिलते वे आज फूले - फले ।
उल्लू है अब बोलता नित जहाँ होती वहाँ रम्यता ।
होता देश वहाँ विशाल अब हैं कान्तार पाते जहाँ ।
आस्था से अवलोकती वसुमती जो सत्यता-दिव्यता ।८।

भूमा में भव में विभूतितन में भू में मनोभाव में ।
होते हैं जितने विकार मल या मालिन्य के सूत्र से ।
देती हैं उनको निवृत्त कर वे सद्भाव - सद्बोध से ।
हैं संशोधनशील दिव्य कृतियाँ सत्यात्मिका वृत्तियाँ ।९।

कोई हे धन के लिये बहँकता कोई धरा के लिये ।
कोई राग - विराग से विवश हो है त्याग देता उसे ।
कोई वैर - विरोध - क्रोध - मत ले देता उसे है बिदा ।
प्यारा है जितना प्रपञ्च उतना है सत्य प्यारा कहाँ ।१०।

क्या होगा कपड़ा रँगे, सिर मुड़े, कापायधारी बने ।
मालाएँ पहने, त्रिपुंडधर हो, लम्बी जटाएँ रखे ।
क्या होगा सब गात में रज मले या वेश नाना रचे ।
जो हो इष्ट प्रवञ्चना बन यती जो हो न सत्यव्रती ।११।

हो - हो आकुल स्वार्थ है दहलता, आवेश है चौंकता ।
तृष्णा है मुँह ढाँकती, कुजनता है पास आती नहीं ।
निन्दा है बनती विमूढ, डर से है भागती दुर्दशा ।
देखे आनन सत्य का सहमती हैं सर्व दुर्नीतियाँ ।१२।

तारों में दिव के सदैव किसकी है दीखती दिव्यता ।
भूतों में भवभूतिमध्य किसका अस्तित्व पाया गया ।
जीवों में तरु-लता आदि तक में है कौन सत्ता लसी ।
कैसे तो न असत्य विश्व बनता जो सत्य होता नहीं ।१३।

सारी विश्व-विभूति के विषय का आधार अस्तित्व है ।
है अस्तित्व - प्रमाण सत्य वह जो सर्वत्र प्रत्यक्ष है ।
अंतर्दृष्टि समष्टि व्यष्टिगत हो जो दृश्य है देखती ।
तो होती रसवृष्टि है हृदय में सत्यात्मिका सृष्टि है ।१४।

है विश्वस्त, विभूतिमान, भव का सर्वस्व, सर्वाश्रयी ।
है विज्ञान-निधान, ज्ञान-निधि का विश्राम, शान्ताश्रया ।
वादों से बहु अन्यथाचरण से वंदग्ध - व्युत्पत्ति से ।
तर्कों से वह क्यों असत्य बनता, है सत्य तो सत्य ही ।१५।

चाहे हो रवि या शशांक अथवा हों व्योमतारे सभी ।
चाहे हों सुरलोक के अधिप या हों देव देवांगना ।
चाहे हो दिव-दामिनी भव-विभा चाहे महाअग्नि हो ।
दिव्यों में उतनी मिली न जितनी है सत्य में दिव्यता ।१६।

है रम्या गुरुतामयी सहृदया मान्या महत्तांकिता ।
नाना दिव्य विभूति-भाव-भरिता कान्ता मनोज्ञा महा ।
सौम्या शान्ति-निकेतना सदयता की मूर्ति संभाविता ।
श्वेताभा-सदना सितासिततरा है सिद्धिदा सत्यता ।१७।

हैं सेवा करती प्रसन्न मन से होते समुत्सन्न की ।
पोंछा हैं करती प्रफुल्ल चित से आँसू व्यथाग्रस्त का ।
जाती हैं बन पोत पूत रुचि से दुःखाब्धि में मग्न का ।
पूर्णानन्द - निकेतना प्रकृति की हैं सात्विकी वृत्तियाँ ।१८।

प्यासे को जल दे, विपन्न जन को आपत्तियों से बचा ।
चिन्ताएँ कर दूर चिन्तित जनों की चिन्त्य आदर्श से ।
बाधाएँ कर ध्वस्त व्यस्त जन की संत्रस्त को त्राण दे ।
होती है सुखिता सदा सदयता हो पूर्ण आनन्दिता ।१९।

हो राका-रजनी समान रुचिरा हो कीर्त्ति से कीर्त्तिता ।
हो सत्कर्म - परायणा सहृदया हो शान्ति से पूरिता ।
हो सेवा - निरता उदारचरिता हो लोक - सम्मानिता ।
होती हैं अभिनन्दिता सुकृतियाँ हो भूरि आनन्दिता ।२०।

पाता है वह सत्य का, पतित को है पूत देता बना ।
पाते हैं उसको सचेत उसमें है पूर्त्ति चैतन्य की ।
है उद्धारक धर्म का सतत है सत्कर्म का संग्रही ।
है आनन्द-निधान मूर्त्ति भव में श्रीसच्चिदानन्द की ।२१।

चाहे हों रवि सोम शुक्र अथवा हो व्योम - तारावली ।
चाहे हों ललिता लता - तृण हरे उत्फुल्ल वृक्षावली ।
चाहे हों भव भव्य दृश्य सबकी देखे महादिव्यता ।
क्यों आनन्दविभोर हो न वह जो आनन्दसर्वस्व है ।२२।

चाहे हो नभ नीलिमा - निलय या भू शस्य से श्यामला ।
चाहे हो वन हरी भूमि अथवा हो वृक्ष रम्य स्थली ।
पाता है वह प्रेमदेव - विभुता की व्यंजना विश्व में ।
पूर्णानंद मिला कहाँ न उसको जो प्रेमसर्वस्व है ।२३।

है विज्ञात मनोज्ञ मानसर के कान्तांबुजों की कथा ।
देखा है खिलना गुलाब - कुल का नीपादि का फूलना ।
जानी है कुसुमावली - विकचता आम्रादि की हृष्टता ।
होती है अतुला प्रफुल्ल चित की आनन्द - उत्फुल्लता ।२४।

भू पाये ऋतु-कान्त-कान्ति उतनी होती नहीं मोदिता ।
होता व्योम नहीं प्रसन्न उतना पा शारदी पूर्णिमा ।
देखे दिव्यतमा विभूति भव की पा वृत्ति सर्वोत्तमा ।
होती है जितनी विमुग्ध मन को आनन्द - उन्मत्तता ।२५।

देती है भर भर भाव में सरसता कान्तोक्ति में मुग्धता ।
खोती है तमतोम लोक - उर का आलोक-माला दिखा ।
कानों में चित में विमुग्ध मन में है ढाल पाती सुधा ।
हो दिव्या सविता समान कविता देती महानन्द है ।२६।

लाती है चुन फूल को सुकरता से नन्दनोद्यान से ।
लेती है फल कल्प से सुरगवी को है सदा दूहती ।
दे - देके मत को प्रकाश, भरती है भावमें भव्यता ।
हो दिव्या दिव भासमान प्रतिभा पाती महानन्द है ।२७।

पाते जीवन हैं प्रफुल्ल बनके सद्भाव - पोधे सदा ।
होती है सरसा प्रवृत्ति - लतिका हो सर्वथा सिंचिता ।
है सिक्ता बनती सुचारु रुचि ही दूर्वा-समा शोभना ।
प्राणीके उर - भूमिमध्य महती आनन्द - धारा बहे ।२८।

नाना प्राणिसमूह पोषणरता है मेघमाला - समा ।
है वैसी रस - दायिका सकल को जैसी कि देवापगा ।
पाते हैं सुख - साधिका शरद् की शान्ता सिता-सी उसे ।
हो जाती मति है महान - हृदया आनन्दमग्ना बने ।२९।

झाँकी है उसकी कहाँ न, झुकके औ' झाँकके देख लो ।
है होती रहती दिशा मुखरिता सत्कीर्ति - आलाप से ।
है नाचा करती विभुति विभु की द्रष्टा - दृगों में सदा ।
है आनन्दनिमग्नभूत जन को आनन्दमग्ना मही ।३०।

प्यारा है जितना स्वदेश उतना है प्राण प्यारा नहीं ।
प्यारी है उतनी न कीर्त्ति जितनी उद्धार की कामना ।
उत्सर्गीकृत मातृभूमि पर जो सन्तान है, धन्य है ।
पाता है वह महानन्द बनता जो त्याग सर्वस्व है ।३१।

जो है मूर्त्ति विवेक की, प्रगति है जो ज्ञान-विज्ञान की ।
जो है सर्वजनोपकार - निरता प्रज्ञामयी मुक्तिदा ।
जो है प्रेमपरायणा, मनुजतासर्वस्व, सत्यप्रिया ।
है विद्या वह महानन्द - जननी, शुद्धा, परासंज्ञका ।

———

विद्या-मंदिर
काशी